प्रौढ़ शिक्षण :
अतीत एवं वर्तमान

भवानी शंकर गर्ग

प्रौढ़ शिक्षण : अतीत एवं वर्तमान
भवानी शंकर गर्ग

प्रौढ़ शिक्षण : अतीत एवं वर्तमान

भवानीशंकर गर्ग

चांसलर

जनार्दनराय नागर राजस्थान विद्यापीठ विश्वविद्यालय,

उदयपुर (राजस्थान)

एवं

संरक्षक, भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ, नई दिल्ली

© लेखक

प्रकाशन वर्ष :– 2014 ई.

मूल्य :– ₹ 160.00

प्रकाशक :– जन शिक्षण एवं विस्तार कार्यक्रम
निदेशालय,
जनार्दनराय नागर राजस्थान विद्यापीठ (डीम्ड) विश्वविद्यालय,
उदयपुर, (राजस्थान), 313001

मुद्रक :– चिराग प्रकाशन
3–थ–15, अभिमन्यु मार्ग,
प्रताप नगर सेक्टर–5, हिरण मगरी,
उदयपुर (राजस्थान), 313001

विषय सूची

1.	भूमिका	I-III
2.	आमुख	IV-VI
3.	प्रौढ़ शिक्षण और मानवता	1–7
4.	बेहतर जीवन हेतु शिक्षण की अनिवार्यता	8–10
5.	शिक्षित जनता तथा प्रजातंत्रीय राष्ट्र	11–15
6.	भारतीय शिक्षा दर्शन के संदर्भ में वर्तमान शिक्षा	16–20
7.	राष्ट्रीय शिक्षा नीति तथा उसकी प्रगति	21–24
8.	जनतंत्र और संपूर्ण साक्षरता अभियान	25–29
9.	निरक्षरता उन्मूलन के उपाय	30–34
10.	राष्ट्रीय साक्षरता अभियान एवं जन सहभागिता	35–39
11.	अनौपचारिक शिक्षा और नई शिक्षा नीति	40–49
12.	महिला शिक्षा में महिलाओं की भूमिका	50–52
13.	श्रमिक शिक्षा : क्या और क्यों	53–55
14.	प्राचीन काल में राजस्थान	56–58
15.	राजस्थान में वैदिक कालीन प्रौढ़ शिक्षण	59–62
16.	उत्तर वैदिक युग का राजस्थान	63–65
17.	समुद्री तूफान	66–68
18.	महाकाव्य काल में राजस्थान की प्रौढ शिक्षा	69–70
19.	बौद्ध काल में प्रौढ़ शिक्षण	71–73
20.	जैन धर्म और प्रौढ़ शिक्षण	74–75
21.	स्मृतिकाल की प्रौढ़ शिक्षण	76–77
22.	राजपूत काल	78–95
23.	ब्रिटिश शासनकाल का आरंभ	96–103
24.	नव जागरण काल	104–111
25.	स्वातंत्र्योत्तर काल	112–132
26.	साक्षर भारत प्रायोजना – एक अध्ययन	133–137
27.	अनुक्रमणिका	138–139

I

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक "प्रौढ़ शिक्षण : अतीत एवं वर्तमान" के लेखक स्वनामधन्य प्रो. भवानी शंकर गर्ग शिक्षा जगत के एक ऐसे बहुआयामी व्यक्तित्व हैं, जिन्होंने राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विशेष रूप से प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में अत्यंत विशिष्ट योगदान दिया है। प्रो. गर्ग उच्च प्रतिभा सम्पन्न एक श्रेष्ठ शिक्षक, कुशल प्रशासक एवं प्रबुद्ध विचारक हैं। प्रौढ़ शिक्षा के साथ शिक्षा के प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च शिक्षा के स्तर तक की प्रगति के लिए प्रो. गर्ग 66 वर्षों से निरन्तर कार्यरत हैं। मूलतः आपश्री की कर्मस्थली जनार्दनराय नागर राजस्थान विद्यापीठ (डीम्ड) विश्वविद्यालय, एवं कुल उदयपुर रही है जहाँ पर आप ने प्रशासनिक और अकादमिक दोनों प्रकार के पदों पर कार्य करते हुए विद्यापीठ के विकास में महती योगदान प्रदान किया है। आपश्री को विद्यापीठ में प्रवेश करने के साथ ही राजस्थान विद्यापीठ के संस्थापक स्व. मनीषी पं. जनार्दनराय नागर का सानिध्य एवं स्नेह प्राप्त हुआ, जो पं. नागर के स्वर्गवास तक बना रहा। लगभग 50 वर्षों तक आपने विद्यापीठ में शिक्षा और विशेषकर जीवन पर्यन्त शिक्षा के क्षेत्र में अनेक अभिनव प्रयोग किए, इस दौरान आपश्री जनपद (नगरीय अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र), जनता कॉलेज और लोक शिक्षण प्रतिष्ठान के मंत्री, प्राचार्य, निदेशक और संचालक भी रहे।

राजस्थान विद्यापीठ का डबोक परिसर, जो पंचायतन यूनिट के नाम से जाना जाता है, के आपश्री अनेक वर्षों तक अधिष्ठाता रहे हैं। डबोक परिसर में जब राजस्थान विद्यापीठ की नवीन इकाई प्रारंभ करने का निर्णय लिया गया तो पं. नागर ने इस दुष्कर कार्य का नेतृत्व प्रो. गर्ग को दिया, यह अपने आप में एक चुनौती भरा कार्य था। श्री गर्ग ने अपनी ऊर्जा को डबोक परिसर के विकास में लगा दिया, परिणाम स्वरूप डबोक परिसर शनैः शनैः औपचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षा की दोनों विधाओं का प्रमुख केन्द्र बन गया। डबोक परिसर में कार्य करते हुए प्रो. गर्ग ने प्रौढ़ एवं निरंतर शिक्षा अथवा जीवन पर्यन्त शिक्षा के क्षेत्र में जो कार्य किया, वह एक मील का पत्थर था।

सन् 1987 में राजस्थान विद्यापीठ को डीम्ड–टु–बी विश्वविद्यालय का स्तर प्राप्त हो जाने के पश्चात् आपश्री का विश्वविद्यालय के विकास में भी

विशिष्ट योगदान रहा, विशेषतः 1997 में जब आपश्री डीम्ड विश्वविद्यालय के चांसलर नियुक्त हुए तो उसके पश्चात् विद्यापीठ में वैश्वीकरण एवं आर्थिक उदारीकरण से उत्पन्न हुई चुनौतियों को दष्टिगत रखते हुए विद्यापीठ में प्रबंधन, कम्प्यूटर साईंस एवं आईटी तथा चिकित्सा विज्ञान के अनेक पाठ्यक्रम प्रारंभ होने का श्रेय आपश्री के गतिशील नेतृत्व को ही जाता है। आज जनार्दनराय नागर राजस्थान विद्यापीठ (डीम्ड) विश्वविद्यालय, उदयपुर जनजाति बहुल दक्षिणी राजस्थान का एक प्रमुख शिक्षण संस्थान है। विद्यापीठ के अतिरिक्त प्रो. गर्ग का उदयपुर नगर की अनेक संस्थाओं के निर्माण, संचालन एवं प्रबन्धन में अपना प्रमुख योगदान है। साथ ही प्रो. गर्ग का प्रदेश और राष्ट्रीय स्तर पर भी शिक्षण एवं समाज सेवा में उल्लेखनीय योगदान रहा है। आपश्री गत चार दशकों से अधिक समय से भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ, नई दिल्ली से सम्बद्ध हैं, इस दौरान आपश्री ने उपाध्यक्ष, अध्यक्ष और संरक्षक की भांति कार्य करते हुए संघ को एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का स्वरूप प्रदान किया है। वर्तमान में भी आपश्री संघ के संरक्षक हैं।

राष्ट्रीय स्तर के साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय पटल पर भी प्रौढ़ एवं निरंतर शिक्षा अथवा जीवन पर्यन्त शिक्षा के स्तर में भी प्रो. गर्ग का अविस्मरणीय योगदान है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रो. गर्ग ने न्यूयार्क, पेरिस स्थित यूंनेस्को के संगठनों की विभिन्न समितियों के माध्यम से अपना विशिष्ट योगदान दिया है। प्रो. गर्ग एशियन साउथ पेसिफिक ब्यूरो ऑफ एडल्ट एज्यूकेशन के अध्यक्ष रहे हैं। इसके अलावा आपश्री इन्टरनेशनल फेडेरेशन ऑफ वर्कर्स एण्ड एडल्ट एज्यूकेशन से भी सक्रिय रूप से जुड़े रहे हैं।

प्रस्तुत पुस्तक ''प्रौढ़ शिक्षण : अतीत एवं वर्तमान'' में ऐसे बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी प्रो. गर्ग के आलेखों का संकलन हैं जिसका पटल अत्यंत व्यापक है। विभिन्न अवसरों पर कलमबद्ध किए गए इन आलेखों में वैदिक काल से लेकर वर्तमान तक के प्रौढ़ शिक्षा के विभिन्न आयामों को प्रो. गर्ग ने सम्मिलित किया है जो विभिन्न कालखण्डों में प्रौढ़ शिक्षा के स्वरूप को तो स्पष्ट करते ही हैं, साथ ही भविष्य में भी प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में आने वाली चुनौतियों का सामना करने के लिए भी दिशानिर्देश प्रदान करते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में एक स्थान पर प्रो. गर्ग ने लिखा है कि वैदिक काल में प्रौढ़ शिक्षा का जो सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया था, उसके अनुसार ''पृथ्वी हमारी माता है और हम सब पृथ्वी के पुत्र हैं।'' इस प्रकार राष्ट्र को माता मानने की प्रेरणा दी

गयी और राष्ट्र प्रेम के बीज बोए गए। संपूर्ण समाज को एक सूत्र में पिरोने के लिए सामाजिक एकता का भाव प्रतिष्ठित किया गया।'' इस काल में सौ वर्ष तक जीवित रहने का लक्ष्य संयम के साथ जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा प्रदान करता था। प्रो. गर्ग के अनुसार इस समय समाज में शिक्षा की ज्योति जागृत करने के लिए भी विद्यार्थी को उच्च आदर्श स्थापित करने का चैतन्य अपनाना होता था। विद्यार्थी व्यक्तिशः सम्पर्क कर समाज के व्यक्तियों को सांयकाल के समय किसी एक सार्वजनिक स्थान पर एकत्रित होने की प्रेरणा देता था। कहने का तात्पर्य है कि भारत राष्ट्र में प्रारंभ से ही शिक्षा के उच्च आदर्श स्थापित किए गए थे जो आज भी प्रेरणा के स्रोत हैं। प्रस्तुत पुस्तक में कुल चौबीस आलेख संकलित हैं जो भारत में प्रौढ़ शिक्षा के उद्‌भव, विकास और उसकी चुनौतियों को स्वयं में समेटे हुए हैं और प्रौढ शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत कार्यकर्ताओं, नीतिनिर्माताओं सभी के लिए दिशा निर्देश का कार्य करते हैं। प्रौढ़ शिक्षा जिसे आज जीवन पर्यन्त शिक्षा या सतत शिक्षा भी कहा जाता है, जन शिक्षण का सतत माध्यम है।

मैं व्यक्तिशः उक्त पुस्तक को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए हर्ष का अनुभव कर रहा हूँ कि विद्वद् पाठक इस पुस्तक से लाभान्वित होंगे और इस उपयोगी प्रकाशन का स्वागत करेंगे।

प्रो. एस.एस. सारंगदेवोत
वाइस चांसलर,
जनार्दनराय नागर राजस्थान
विद्यापीठ (डीम्ड) विश्वविद्यालय,
उदयपुर (राजस्थान)

आमुख

भारत वर्ष में युगों से प्रौढ़ शिक्षण का कार्य सामाजिक जीवन के साथ–साथ योजनाबद्ध और वैज्ञानिक आधार पर चलता रहा है। व्यक्ति परिवार, समुदाय और समाज के विकास का कार्य एक दूसरे के विकास से जुड़ा है और वह सामाजिक जीवन के अंग के रूप में निरंतर रूप से स्वतः ही चलता रहा है।

प्रौढ़ शिक्षण का आधार राष्ट्र की सभ्यता, संस्कृति और आध्यात्म रहा है। मनुष्य के लिए जीवन पर्यन्त चलने वाली एक सामान्य प्रक्रिया रही है। चाहे उसे नाम 'शिक्षा' या 'प्रौढ़ शिक्षा' दिया गया हो। व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में अनौपचारिक रूप से विभिन्न प्रवृत्तियों के माध्यम से शिक्षण–दीक्षण होता रहा है। भारत में शिक्षा का सशक्त माध्यम प्राचीन काल में श्रुति रहा है। कथा, कीर्तन, पर्व, त्यौहार, हाट, बाजार, मेले, देशाटन, तीर्थ आदि इसके प्रमाण हैं। इससे व्यक्ति की शिक्षा–दीक्षा के साथ–साथ राष्ट्रीय अखंडता और भावनात्मक एकता भी बनी रही है। हमारे यहाँ लोगों के खान–पान, बोलचाल, रहन–सहन, रीति–रिवाज़, मान्यताएँ आदि भिन्न–भिन्न होते हुए भी उनमें एकता उसी कारण बनी रही है। यही कारण है कि विभिन्नता में एकता हमारी विशेषता है। कहा भी जाता है कि भारत का नागरिक साक्षर चाहे न हो परन्तु ज्ञानी अवश्य है। भारत में औपचारिक शिक्षा कार्य सदा ही चलता रहा है। प्रारंभ में यह कार्य स्थानीय पाठशालाओं, गुरुकुलों, आश्रमों और धार्मिक स्थलों के माध्यम से होता था।

देश, काल, परिस्थितियों और बदलती आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षा के स्वरूप और शिक्षण दीक्षण की व्यवस्था एवं प्रणाली में भी परिवर्तन होता रहा है। आधुनिक काल में विशेषकर बाहरी शाक्तियों द्वारा भारत में अपना साम्राज्य स्थापित किए जाने और उसके बाद स्वतंत्रता के लिए जन आन्दोलन के रूप में औपचारिक शिक्षा कार्य को अधिक महत्व दिया गया और उसके लिए नये प्रयोगों के साथ सारे राष्ट्र में शिक्षा की नई योजनाएँ बनाकर लागू की गई। उसी क्रम में प्रौढ़ शिक्षा को औपचारिक रूप से नया स्वरूप प्राप्त हुआ और उसे राष्ट्रीय स्तर पर न केवल महत्व ही दिया गया परन्तु संकल्प के रूप में लागू किया गया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राष्ट्र में प्रजातंत्रीय सरकारों की स्थापना हुई। इसलिए यह और भी अनिवार्य हो गया कि देश की जनता जो राष्ट्र निर्माण और सरकार बनाने और चलाने में भागीदार है–साक्षर और शिक्षित हो। इस कार्य के लिए समय–समय पर अनेक योजनाएँ बनाकर लागू की गईं। इस क्रम में सर्वप्रथम ब्लॉक डेवलपमेण्ट प्रोग्राम को प्रारम्भ किया गया, जिसके अन्तर्गत ब्लॉक डेवलपमेण्ट अधिकारी की नियुक्ति की गयी, जिसको ब्लॉक के विकास के लिए उत्तरदायी बनाया गया। प्रत्येक ब्लॉक के अन्तर्गत प्रौढ़ एवं सामाजिक शिक्षा अधिकारी, कृषि प्रसार अधिकारी तथा सहकारिता शिक्षा अधिकारी की नियुक्ति की गयी, ताकि गांव विकास की मुख्य धारा से जुड़ सके। 1977 में पहली बार देश में इसके लिए राजनैतिक इच्छा शक्ति बनी और उसके आधार पर संकल्प के साथ राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम (NAEP) प्रारंभ किया गया। वास्तविकता में तो 1986 में ही विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने शिक्षा के तीन आयामों में प्रसार कार्य को प्राथमिकता प्रदान कर दी थी और प्रौढ़ शिक्षा उच्च शिक्षा का महत्वपूर्ण भाग बन गई थी, जिसका यह लाभ हुआ कि उच्च शिक्षा केन्द्र भी प्रौढ शिक्षण से जुड़े और प्रौढ़ शिक्षा में अनेक अभिनव प्रयोग हुए। वर्ष 1988 में राष्ट्रीय साक्षरता मिशन अभिकरण (NLMA) की स्थापना हुई, जिसके माध्यम से सारे राष्ट्र में सम्पूर्ण साक्षरता कार्यक्रम चला कर असाक्षरों को साक्षर बनाने के लिए जन–आंदोलन के माध्यम से कार्य किया गया है।

1992 वर्ष में प्रौढ़ एवं निरन्तर शिक्षा के दृष्टिकोण में आमूल–चूल परिवर्तन हुआ। आर्थिक परिवर्तनों के परिणामस्वरूप 1992 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति को परिवर्तित कर उसमें संशोधन किया गया तथा उसमें यह घोषित किया गया कि जीवन पर्यन्त शिक्षा को भारतीय शिक्षा पद्धति का एक मूलभूत अंग घोषित किया जाता है तथा विश्वविद्यालयों से यह अपेक्षा की जाती हैं कि वे स्वयं सर्वाभौमिक शिक्षा के अभिकरण की तरह जीवन पर्यन्त शिक्षा के केन्द्र स्थापित करें, ताकि शिक्षा को जन–जन तक पहुँचाया जा सके। इन्हीं सब तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने 11वीं पंचवर्षीय योजना में निरन्तर शिक्षा को विस्तार प्रदान करते हुए उसे जीवनपर्यन्त शिक्षा और जागरूकता के कार्यक्रमों को विश्वविद्यालयों के लिए विकसित किया।

इस पुस्तक के अध्याय 12 से आगे के अध्यायों में राजस्थान के संदर्भ में विशेष जानकारी उपलब्ध कराई गई है। आशा है कि पाठकों को यह जानकारी लाभदायक लगेगी।

राष्ट्र में चलाये जा रहे प्रौढ़ शिक्षा और सम्पूर्ण साक्षरता कार्यक्रम के संबंध में मैं समय–समय पर लिखता रहा हूँ तथा उन्हीं विचारों का संकलन इस पुस्तक में प्रस्तुत कर रहा हूँ। आशा है प्रौढ़ शिक्षा और सम्पूर्ण साक्षरता कार्यक्रमों से जुड़े व्यक्तियों के लिए यह अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी।

जनवरी, 2014

प्रो. भवानीशंकर गर्ग
चांसलर,
जनार्दनराय नागर
राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर तथा
संरक्षक, भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ,
नई दिल्ली

अध्याय - 1

प्रौढ़ शिक्षण और मानवता

प्रारम्भिक काल से ही मानव इस जगत के विभिन्न रहस्यों को उद्‌भाषित करने के लिए चिन्तन करता रहा है, जिसकी व्याख्या उसने विभिन्न स्वरूपों में की है। भारतीय वैदिक साहित्य में इसके यथेष्ट प्रमाण उपलब्ध हैं। वैदिक मानव ने अपने चारों ओर स्थित रहस्यमय वातावरण को देखा तो उसकी सरल बुद्धि ने प्रकृति की इन विभिन्न शक्तियों को पूजना प्रारंभ कर दिया था। वैदिक मानव ने सम्पूर्ण चराचर जगत को देवी–देवताओं की तीन श्रेणियों में विभाजित कर दिया : द्युलोकवासी, अन्तरिक्षवासी, व पृथ्वीवासी। इन तीनों लोकों की विभिन्न शक्तियों की स्तुति हेतु मानव ने अनेक सूत्रों व मंत्रों की रचना की तथा यज्ञ कुण्ड में अग्नि प्रज्ज्वलित कर दूध–घृत अन्नादि से आहुति प्रदान की। अग्नि को इन समस्त आहुतियों का संवाहक बनाया। चराचर जगत की विभिन्न शक्तियों की स्तुति के पीछे मानव की यह भावना कार्य कर रही थी कि ये सभी शक्तियाँ उसका कल्याण करेगी। प्रारम्भिक मानव समकालीन अन्य योनियों में सर्वाधिक दुर्बल था। शरीर रचना की दृष्टि से उसके पास अन्य पशुओं की भांति तीक्ष्ण धार वाले दांत, सींग व पंजे नहीं थे, उसका प्रमुख शस्त्र बुद्धि थी। अतः उसने अपनी बुद्धि के बल पर अव्यक्त एवं अदृश्य शक्ति का अनुभव किया तथा उसे धर्म के रूप में अग्रसर किया। शीघ्र ही उसने एक निश्चित स्थान पर निवास, पशुओं का पालन व कृषि करना प्रारंभ कर दिया।

डारविन के विकासवाद के सिद्धान्त से भी यह पुष्ट होता है कि मानव का विकास निम्न धरातल के जीवों से क्रमशः हुआ है। वह प्राणी जगत में विकास के उच्चतम धरातल का प्रतिनिधित्व करता है। जीवशास्त्रीय वर्गीकरण भी मानव का पशु जगत के अन्य सदस्यों से सम्बन्ध स्थापित करता है तथा उसको प्राणी–जगत को सर्वाधिक मेधावी मानव की संज्ञा देते हुए कर्मों के आधार पर मानव जीवन का निर्धारण करता है। इसके अतिरिक्त समस्त संस्कृत वाङ्‌मय में भी विभिन्न योनियों से मानव सम्बन्धों पर यथेष्ट सामग्री उपलब्ध है।

एतिहासिक दृष्टि से यह माना जाता है कि प्रारंभिक मानव विचरणशील था तथा संग्रहण और आखेट उसकी जीविका के मुख्य साधन थे। धीरे–धीरे मानव ने एक स्थान पर स्थायी रूप से रहना, कृषि करना व पशु पालना सीखा। लम्बे समय तक एक स्थान पर रहने से क्रमशः कुल, वंश, ग्राम, कबीला (समाज), जन और राष्ट्र का विकास हुआ। इस राजनीतिक व सामाजिक विभाजन ने एक ओर जहाँ मानव समुदाय को विकसित होने के लिए साधन व सुविधाएँ प्रदान की वही दूसरी ओर अनेक इकाईयों में विभाजित भी किया। यह सत्य है कि भारत में पश्चिम के समान राष्ट्र की मान्यता को कभी भी नहीं स्वीकारा गया। भारत में तो प्राचीन काल से ही हमारे ऋषियों ने भौगोलिक सीमाओं की संकुचित परिधि के स्थान पर समस्त वसुधा को एक परिवार माना तथा उसके कल्याण की कामना की है।

अधिकांश चिन्तकों ने समष्टि के स्थान पर व्यक्ति के विषय में ही अधिक सोचा। परिणामस्वरूप यूरोप में एक ऐसे उग्र राष्ट्रवाद का उदय हुआ, जिसका सामना समस्त मानव समुदाय को दो विश्व युद्धों के रूप में करना पड़ा। यह भी सत्य है कि गत शताब्दियों में यूरोप में हुई औद्योगिक–वैज्ञानिक क्रांन्ति ने ही अनेक ऐसे अनुसंधान किये जिसके कारण आज का विश्व भौगोलिक रूप से संकुचित हो गया है। पिछड़े और प्रगतिशील, विकासशील और विकसित देशों के मध्य की खाई पट रही है तथा मनुष्य ने अन्तरिक्ष में भी अपने विजयध्वज को फहरा दिया है।

इसके विपरीत भारतीय चिन्तकों ने अपनी सामाजिक व्यवस्था में ऐसे संस्कारों को विकसित किया जो व्यक्ति की समस्त चराचर जगत के प्रति विनयशीलता की कहानी को कहता है।

संस्कारों के अध्ययन से यह विदित होता है कि प्राचीन भारत में प्रत्येक गृहस्थ के लिए यह अनिवार्य था कि पंच महायज्ञों को सम्पन्न करे। यह पंच महायज्ञ भारतीयों की नैतिकता, आध्यात्मिकता, प्रगतिशीलता एवं सदाशयता के प्रतीक थे। इनको सम्पादित करने के पीछे एकमात्र उद्देश्य था कि सारे विश्व के प्राणी एक ही सृष्टि–बीज के द्योतक हैं, अतः सब में आदान–प्रदान तथा जियो और जीने दो का प्रमुख सिद्धांत कार्यरूप में परिणत रहना चाहिए।

अतः जीवन के सर्वोच्च आदर्श के उद्देश्य की सृष्टि से मानव धर्म की कल्पना करना आज की बड़ी आवश्यकता है। इस आधार पर एक ऐसे विश्वजनित् मानव धर्म की कल्पना करना है जो 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के उद्देश्य की प्राप्ति में

सहायक हो।

आज इस बात पर विचार किया जाना समय की आवश्यकता है कि मानव धर्म के मुलभूत विचार क्या है ? क्योंकि आज का मानव राष्ट्रीय सीमाओं को त्याग कर समूचे विश्व से सम्पर्क स्थापित कर रहा है। आज का मनुष्य एक दूसरे से इतना अधिक निकट आ गया है, जितना इससे पहले कभी नहीं था और यह भी कम आश्चर्य की बात नहीं है कि स्थायित्व की पुरानी मान्यताओं के टूट–बिखर जाने और देश की सीमाओं में जबरदस्त फेरबदल हो जाने के बाद भी जैसे–तैसे मनुष्य मानवता के व्यापक सिद्धांत की परिधि में सिमटता जा रहा है। व्यक्ति एक दूसरे की सहायता के लिए मिलकर प्रयास करने लगे हैं। इसका एकमात्र कारण यह भावना है कि दूसरे लोग संकट में हैं। इस प्रकार की एकता की प्ररेणा वास्तव में मानव धर्म से ही संभव हो सकती है।

भारतीय चिन्तन परम्परा में विश्व को तत्वमसि का दार्शनिक विचार प्रत्येक व्यक्ति में एक ही आत्मा की अभिव्यक्ति का द्योतक है। मनीषियों ने इसी दार्शनिक विचारधारा को दया, अहिंसा आदि गुण प्राप्त करने का कारण बताया है। भारतीय चिन्तन में इस प्रकार से नैतिकता व तत्व दर्शन अर्थात् आध्यात्म को हम साथ–साथ चलते हुए देखते हैं। दक्ष का यह कथन कि यदि कोई ''आनन्द चाहता है तो उसे दूसरे को उसी दृष्टि से देखना चाहिए, जिस दृष्टि से वह स्वयं को देखता है'', मानव धर्म के मूलभूत विचार के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

यूरोपीय चिन्तन ने विज्ञान के द्वारा यह प्रतिपादित किया है कि रहस्यानुभूति से किस प्रकार पीछा छुड़ाया जा सकता है और किस प्रकार इस बह्माण्ड की क्रिया–प्रतिक्रियाओं को समझा जा सकता है।

जेकब ब्रोनावस्की के शब्दों में, ''सत्य के रूप में अनुभूत तथ्य से प्राप्त अधिकार ही वह मुख्य शक्ति है जिसने हमारी सभ्यता को पुनर्जागरण काल से अब तक आगे बढ़ाया और उसका संचालन किया है।'' परन्तु अनुसन्धान व प्रयोगशालाओं से व्यावहारिक लाभ उठाने की होड़ में विज्ञान की इस बुनियादी प्रतिज्ञा को विस्मृत कर देने के कारण विज्ञान पथभ्रष्ट हो गया है।

यहाँ पर डॉ. हेजेन बर्ग के मत का प्रतिपादन करना काफी युक्तिसंगत होगा। उनके अनुसार मन, प्रेम और ईश्वर जैसी मान्यताएँ मनुष्य के दीर्घकालीन अनुभवों के बाद विकसित हुई हैं और ये मानव जाति की प्राकृतिक भाषा के अंग हैं तथा इनका 'वास्तविकता स सीधा सम्पर्क' है। अतः मानव जीवन के लक्ष्यों

को पूर्णतः प्राप्त करने हेतु प्राकृतिक विज्ञान का संबंध 'तत्वमसि' की दार्शनिक विचारधारा से जोड़ना होगा।

पृथ्वी के विभिन्न भू–भागों पर विकसित हुई मानव संस्कृतियों को तीन कारकों की रूप में देखा जा सकता है–अखिल मानवीय, सामूहिक व वैयक्तिक। सामूहिक और वैयक्तिक रूप से विभिन्न संस्कृतियों से विकसित हुए व्यक्तियों में भिन्नता होना आवश्यक है। परन्तु प्रत्येक संस्कृति के अखिल मानवीय स्वरूप में समानता होती है। अतः यदि उस कारक को प्रधान मानकर भावी मानव जीवन का लक्ष्य प्रतिपादित करने का प्रयत्न किया जाए तो मानव विकास के सार्वभौम लक्ष्य की स्थापना की जा सकती है।

ऐतिहासिक दृष्टि से मानव विकास की प्रक्रिया में विभिन्न युगों ने मानव को प्रभावित किया है। आदिम युग से अब तक के सभी युगों में शिक्षा को समुचित स्थान नहीं प्राप्त हो सका है। लेकिन यह दृष्टि भारतीय संदर्भ में सत्य नहीं है। यूरोप में विगत के वर्षों में शिक्षा को दो आदर्शों ने प्रमुख रूप से प्रभावित किया है : प्रथम, सबके लिए शिक्षा की समान सुविधाएँ उपलब्ध करना तथा द्वितीय, व्यक्ति को अपना विकास करने के लिए हर सम्भव अवसर प्रदान करना।

भारतीय संदर्भ में अति प्राचीन काल से ही शिक्षा का उद्देश्य निश्चित हो गया था। भारतीय शिक्षा पद्धति का उद्देश्य विद्यार्थी में किसी भांति विवेक बुद्धि को जाग्रत करना था, जिससे वह अपने स्वरूप को भलीभांति पहचान सके और तदानुकूल कार्य करता हुआ उस कार्य को करने के लिए इस भांति सफलता अर्जित कर ले, जिसको देखकर सब कोई बार–बार 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' कहकर उसका अभिववादन करे।

ऋग्वेद में मनु को मानव–जाति का पिता कहा गया है। एक वैदिक कवि ने स्तुति की है ताकि यह मनु के मार्ग से च्युत न हो। मनुस्मृति में मनु ने धर्मशास्त्र एवं अर्थशास्त्र के समस्त विषयों को लिया है। मनु ने मानव जीवन के सभी पक्षों का चिन्तन किया है और यह चिन्तन स्वयं में इतना परिपूर्ण है कि इस आधार पर मानव धर्म व समाज की परिकल्पना सम्भव हो सकती है। संक्षेप में मनु ने वर्ण, धर्म, गृहस्थ की जीवन–विधि एवं वृत्ति, राजधर्म, न्याय शासन, पति–पत्नी के व्यवहारानुकूल कर्तव्य, दान स्तुति और कर्म का विवेचन किया है। भारतीय चिन्तन में जीवन के व्यवस्थित संचालन हेतु मनीषियों ने पुरुषार्थ के मार्ग का अनुसरण करने का आदेश दिया है। पुरुषार्थों की संख्या चार है : धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, जिनमें अन्तिम तो परम लक्ष्य है, जिसकी प्राप्ति

किसी–किसी को ही हो पाती है, अधिकांश के लिए यह केवल आदर्श मात्र है। इन चारों पुरुषार्थों के पालन हेतु चार आश्रमों की व्यवस्था भारतीय सामाजिक व्यवस्था का एक विशिष्ट गुण है। अन्तिम पुरुषार्थ मोक्ष की व्याख्या करते हुए न्याय सूत्र में कहा गया है कि मोक्ष सर्वोत्तम लक्ष्य है तथा जिसे कई नामों से पुकारा जाता है : यथा मुक्ति, अमृतत्व, निःश्रेयस। केवल इसकी प्राप्ति के लिए व्यक्ति को निर्वेद एवं वैराग्य धारण करना चाहिए। काम को सबसे निम्न श्रेणी का पुरुषार्थ माना गया है, इसे केवल मूर्ख ही सर्वोत्तम पुरुषार्थ मानते हैं। परन्तु धर्मशास्त्रकारों ने सर्वथा ही इसकी भर्त्सना नहीं की है। वे काम को मानव की क्रियाशील प्रेरणा के रूप में ग्रहण करते हैं।

कौटिल्य का मत है कि धर्म एवं अर्थ के अविरोध में काम को त्राहि करनी चाहिए। किन्तु अपनी मान्यता के अनुसार कौटिल्य ने अर्थ को ही प्रधानता दी है। क्योंकि अर्थ से ही धर्म एवं काम की उत्पत्ति होती है। महाभारत में आया है कि एक समझदार व्यक्ति धर्म, अर्थ, काम–तीनों पुरुषार्थों को प्राप्त करता है, किन्तु यदि तीनों की प्राप्ति न हो सके तो वह धर्म एवं अर्थ प्राप्त करता है और यदि उसे केवल एक को ही चुनना है, तो वह धर्म का चुनाव करता है। धर्म शास्त्रकारों ने इस प्रकार आसन्न एवं परम लक्ष्यों एवं प्रेरणाओं की ओर संकेत किया है और अन्त में परम लक्ष्यों एवं प्रेरणाओं को ही श्रेष्ठतम मान है। मुन ने अरस्तु के समान ही सभी क्रियाओं के पीछे कोई अनुमानित या पूर्वकल्पित शुभ या कल्याण को मान लिया है। इन्होंने कहा है कि प्रत्येक जीव वासनाओं की ओर झुकता है, अतः इन पर बल देने के स्थान पर उनके विग्रह पर बल देना चाहिए।

परम सत्य को समझने का एकमात्र साधन शिक्षा ही माना गया है। इसकी पुष्टि शिक्षा के ऐतिहासिक अध्ययन से होती है। यूरोप में ऐसी शिक्षा के केन्द्र गिरजाघर व विश्वविद्यालय थे और उन्हीं पर निर्भर था कि वे जितने भी सामान्य मनुष्यों को लैटिन और ग्रीक वैज्ञानिक, धार्मिक सत्य के उच्च क्षेत्रों तक पहुंचा सकते हैं, पहुंचाए। उस शिक्षा का परिणाम हुआ कि संस्कृति व जनता के दैनिक जीवन के मध्य एक अथाह खाई बन गई। भारतीय संदर्भ में उपनयन संस्कार से यह ज्ञात होता है कि शिक्षा केवल एक विशेष वर्ग ही प्राप्त कर सकता था, तथा उसे भी एक विशिष्ट संस्कार में दीक्षित होना पड़ता था। प्रारंभ में संस्कृत भाषा सामान्य जन की भाषा थी और समाज में वर्ण विभाजन अधिक जटिल भी नहीं था। उस समय सम्भवतः सामान्यजन शिक्षा से वंचित नहीं था।

धीरे–धीरे संस्कृत ने पुरोहित वर्ग की विशिष्ट भाषा का स्थान ग्रहण कर लिया तथा सामान्य जन को अपने प्रत्येक कार्य के लिए इस वर्ग पर निर्भर रहना आवश्यक हो गया।

भाषा व ज्ञान की विशिष्टता के इस स्वरूप को बौद्ध धर्म ने खण्डित किया। गौतम बुद्ध ने सामान्यजन की भाषा का अपने ज्ञान के प्रसार हेतु उपयोग किया। उन्होंने शिक्षा को समान्य जन तक पहुँचाया तथा उसे समाज शिक्षण का एक उपकरण बनाया।

परन्तु विदेशी आक्रमणों के कारण यह सुखद स्थिति अधिक समय तक कायम नहीं रह सकी। यूरोप में वयस्क शिक्षा का प्रारंभ प्रजातंत्र के साथ हुआ। भारत भी ब्रितानी साम्राज्यवाद का अंग होने के कारण इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। आज से सौ वर्ष पूर्व डेनमार्क में गुन्तविग ने वयस्क शिक्षा के महत्व को समझने के पश्चात ही पूर्णतः नवीन पाठशालाएँ, जनता कॉलेज की स्थापना की थी। उनका उद्देश्य यह था कि वयस्क शिक्षा की ऐसी संस्थाओं द्वारा ही धनी–निर्धन, ऊँच–नीच, ज्ञानी–अज्ञानी के बीच की खाई को पाटा जा सकता है। उनका मत था कि जनता कॉलेज को चाहिए कि वे सामान्य आदमी को केवल बुद्धि और ज्ञान ही न दे, अपितु उस सामान्य मनुष्य के दैनिक जीवन व उसकी समस्याओं को भी कॉलेज में लाए। उन समस्याओं का दैनिक वास्तविकता के आधार पर अध्ययन करें, उन्हें नवीन बनाएं तथा उनका नवनिर्माण करें। लोक उच्च विद्यालय Folk High School ही जनता और नव–संस्कृति निर्माण करने वाले बुद्धिमानों के बीच की कड़ी होनी चाहिए, जिससे समस्त ऊँच–नीच का भेद समाप्त हो जाए और एक यथार्थ लौकिक सभ्यता का निर्माण हो।

वयस्क शिक्षा कोई व्यावसायिक शिक्षा नहीं है। इसका उद्देश्य अपने विद्यार्थियों को जीवन में उत्तम आरंभ व नूतन पद प्रदान करना नहीं है। सैद्धांतिक रूप से तो वयस्क शिक्षा उनके लिए है जो जीवन में पहले ही काम धन्धा प्राप्त कर चुके हैं। अतः वयस्क शिक्षा का उद्देश्य उनके लिए अवसर उपलब्ध कराना है जो वहीं स्थिर रहेंगे जहाँ कि वे अब स्थित हैं।

वयस्क शिक्षा की दूसरी विशेषता इसका पूर्णतः स्वेच्छाकृत होना है। इन पाठशालाओं में वयस्क अपनी इच्छा से आता है। इसके अन्तर्गत विद्यार्थी और शिक्षक समान होते हैं। लोकतंत्र की सफलता की पहली आवश्यकता है कि समाज का प्रत्यक व्यक्ति सामाजिक एवं राजनीतिक विषयों में सहउत्तरदायित्व की भावना का अनुभव करे। वह आधुनिक समाज की उलझनों को समझ सके,

जो जीवन में उद्देश्य और लक्ष्यों को निर्धारित करते हैं।

वयस्क और समाज शिक्षा में यह स्वीकार किया जाता है कि परिवर्तन समाज की एक आवश्यकता है। राज्य एवं समाज एक दूसरे के परस्पर विरोधी तत्व हैं। सरकार स्थायित्व पर आशा बांधती है। परन्तु समाज प्रत्येक को इस आशा से छोड़ देता है कि उसमें एक दिन परिवर्तन भी आ सकता है। अतः प्रौढ़ शिक्षक के लिए मानव विरोधी प्रवृतियों का मिश्रण है, जो स्थायी रहता है और परिवर्तन को ध्येय मानता है। यौवन तथा वृद्धावस्था, वार्ता व मित्रता, शिक्षा व भेंट हमारे परिवर्तनशील आचरण को दर्शाते हैं, जबकि कानून व सम्पत्ति आदि हमारे जीवन के स्थायी पक्ष हैं। इस अन्तर्दृष्टि द्वारा वयस्कों को उचित पाठ्यक्रम की प्रथम सीढ़ी के विषय में ज्ञान होता है। स्पष्टतः वयस्क शिक्षण के कार्यक्रम में प्रौढ़ के सम्पूर्ण जीवन के ऊपर विचारना अपेक्षित है। अतः यह आवश्यक है कि वयस्क शिक्षा के पाठ्यक्रम के अन्तर्गत अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, आशुलिपि व भाषा तथा धर्म व राजनीति जैसे परस्पर विरोधों के बीच के विरोध को रचनात्मक बनाया जाए।

वयस्कों हेतु अध्ययन का उपयुक्त क्रम है–परिवर्तन परक सामाजिक शिक्षा जिसके अन्तर्गत वयस्क शिक्षा है। स्थिरता परक राजनैतिक शिक्षा जिसके अन्तर्गत राष्ट्रीय नियम और संविधान है और दोनों के मध्य का मार्ग है आध्यात्मिक शिक्षा। दो विश्व युद्धों के मध्य और पश्चात् में भोगे गए कष्टों ने मानव में एक संसार की भावना को वास्तविकता का रूप दे दिया है। यूनेस्कों ने इसको प्रामणिकता दी है तथा यह विश्व अन्तरनिर्भरता की मान्यता का चिन्ह है।

प्रौढ़ शिक्षा एक ऐसे आन्दोलन के रूप में आज अग्रसर हो रहा है जो एक नव–अन्तर्राष्ट्रीयतावाद का प्रतीक बन गया है। आज वयस्क शिक्षा से सम्बद्ध प्रत्येक व्यक्ति उन अभिशापों से परिचित है जिनसे वयस्क ग्रस्त है। यहाँ पर यह भी बताना युक्तिसंगत होगा कि वयस्क शिक्षा आन्दोलन से पूर्व निर्धनता, निरक्षता, बाल–मृत्यु, खराब स्वास्थ्य, शोषण आदि कठिनाईयाँ विश्व स्तर पर इतनी अधिक कभी भी अन्तर–सम्बन्धित नहीं थीं, जितनी आज हैं।

वयस्क शिक्षा नव–अन्तर्राष्ट्रीयतावाद का केन्द्र बिन्दु बन गयी है और विश्व स्तर पर समस्त मानव समुदाय को जोड़ने वाली एक कड़ी है। अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि वयस्क को आधुनिक ज्ञान विज्ञान और आध्यात्म के उस परम सत्य की अनुभूति करने हेतु प्रेरित किया जाए जो विश्व बन्धुत्व की भावना को विकसित करने में उत्प्रेरक का कार्य कर सकते हैं।

अध्याय - 2

बेहतर जीवन हेतु शिक्षण की अनिवार्यता

अच्छा जीवन जीने के लिए जिन मुख्य बातों की आवश्यकता होती है, उनमें शिक्षा का अपना महत्व है। जिस क्रिया के माध्यम से हम अच्छे बुरे का निर्णय करते है, हानि–लाभ के अन्तर को स्पष्ट करते हैं, व्यक्ति में समझ पैदा करने वाली इसी धारणा को हम शिक्षा कहते हैं। दूसरे अर्थ में किसी वस्तु के गुण दोषों को ध्यान में रखकर उसका उपयोग करना योग्यता है और जिस क्रिया से व्यक्ति में योग्यता का निरन्तर विकास संभव हो उसे शिक्षा की संज्ञा देते हैं।

शिक्षा का मतलब सिर्फ पाठशालाओं में पढ़ना भर नहीं है और नहीं महाविद्यालयों की उपाधि पा लेना मात्र है बल्कि आम जीवन में अनुभव के आधार पर व्यक्तित्व का विकास करना भी शिक्षा का अंग है, जिससे अधिक से अधिक लोगों को लाभ मिले, व्यक्तित्व प्रखर हो और भविष्य उज्ज्वल बन सके। इस तरह यह बड़ी आसानी से समझा जा सकता है कि व्यक्ति की उन्नति के लिये शिक्षा की उपयोगिता दूसरे जीवनदायिनी साधनों से किसी भी रूप में कम नहीं है। ज्ञान के क्षेत्र में विशिष्टता हासिल करने वाले विद्वान शिक्षा के अभाव वाले जीवन को पूर्ण जीवन नहीं मानते।

महान दार्शनिक अरस्तू का कहना है–'शिक्षित व्यक्ति अशिक्षित से उतना ही श्रेष्ठतर है जितना जीवित मृत से'। शिक्षा व्यक्ति के व्यवहार और रहन–सहन को परिष्कृत करती है एक अन्य विद्वान का मानना है–''शिक्षा बालकों का सुन्दर संयम, वृद्ध की सांत्वना, निर्धन का धन और धनवान का आभूषण है'', शिक्षा के महत्व के बारे में ये भी कहा गया है –''शिक्षा विकास का वो क्रम है जिसके द्वारा मनुष्य स्वयं को विभिन्न रूपों में आवश्यकतानुसार भौतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक वातावरण के अनुकूल बनाता है।'' ये सारी बातें, ये सारे विचार इस तथ्य को स्पष्ट करते हैं कि व्यक्ति और समाज के विकास के लिये शिक्षा महत्त्वपूर्ण हैं।

किसी भी उपयोगी बात को अपनाने के लिये हमें अपने सामर्थ्य के

अनुसार काम निश्चित ही करना चाहिये और जहाँ तक पढ़ाई की बात है, इसके प्रति पूरी श्रद्धा दिखानी चाहिये। हमारा देश बहुत बड़ा देश है। चाहे इसे आकार में जनसंख्या की दृष्टि से देखें या फिर खनिज सम्पदा के पक्ष को लेकर बात करें, हमारे देश की विशालता साफ दिखाई देती है। लेकिन ये भी गौर करने की बात है कि हम विश्व के कई छोटे देशों से पिछड़े हुए हैं। हम क्यों पिछड़े हुए हैं ? यदि इसके कारणों को ढूंढने की कोशिश करें तो एक बड़ा कारण देश में उपयुक्त शिक्षा के अभाव का मिलता है। यदि हम अपने देश में स्तरीय शिक्षा के आधार को लेकर कोई सर्वेक्षण करें तो पता चलेगा कि एक बहुत बड़ी आबादी ऐसी है जिसका शिक्षा से संबंध बहुत दूर का है। यही कारण है कि हम प्रत्येक क्षेत्र में पर्याप्त विकास को नहीं पा सके हैं।

हांलाकि साक्षरता के मामले में हम अब उन देशों में शामिल हो गये हैं जिनकी आधी से ज्यादा आबादी साक्षर है। वर्तमान 2001 की जनगणना के अनुसार दर 64.8 प्रतिशत है।

बहरहाल महिलाओं से सम्बन्धित आंकड़ों में हमारी स्थिति अब भी खराब ही है। पुरुषों की तुलना में महिलाओं की संख्या का अनुपात गिरा है। साक्षरता के मामले में भी वे पुरुषों से पीछे हैं। सन् 1981 में महिलाओं की साक्षरता प्रतिशत 28.5 था जो 2005–06 तक 58.5 हो गया है।

जनसंख्या आंकड़ों के अनुसार गांवों से शहरों की और पलायन के कारण महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल, मध्यप्रदेश जैसे राज्यों में जनसंख्या बढ़ी है। इसलिये ग्रामीण इलाकों और छोटे शहरों में रोजगार के अधिक से अधिक अवसर पैदा कर विकास के विकेन्द्रीकरण से कुछ सीमा तक शहरी आबादी में बढ़ोतरी को धीमा किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि गांव से शहर की ओर होने वाले पलायन को नियमित और नियोजित करने से न सिर्फ शहरों को दम घुटने से बचाया जा सकेगा, बल्कि अगले कुछ वर्षों में ग्रामीण इलाकों में विकास के अवसर भी पैदा किये जा सकेंगे।

शिक्षा के अभाव में निरक्षर लोगों ने परिवार नियोजन के महत्व को नहीं जाना और देश की आबादी निरन्तर बढ़ती गई। अधिक जनसंख्या ने गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी व अपराध प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया।

शिक्षा के व्यापक अभाव से धार्मिक संकीर्णता रूढ़िवादी ईर्ष्या, द्वैष, साम्प्रदायिक वमनस्य की भावना बढ़ी। जिससे नैतिक मूल्यों का पतन होता रहा।

यद्यपि सरकार तथा शिक्षा संगठनों द्वारा शिक्षा माध्यमों से भी इसमें

महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। यह शिक्षा का प्रताप है कि हमारा देश तकनीकी क्षेत्र में विश्व के विकसित राष्ट्रों के साथ कदम मिलाकर चलने में सक्षम हो रहा है। विज्ञान के क्षेत्र में तरक्की की है। शिक्षा के जरिये समाज में गिरते नैतिक मूल्यों को पुर्नस्थापित किया जा रहा है और उसमें काफी सफलता मिली है। ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा के प्रयास से ग्रामवासियों में चेतना आई है तथा वे रूढ़िवादी संस्कारों को त्यागने लगे हैं।

शिक्षा सामाजिक परिवर्तन और आधुनिकीकरण का एक सशक्त साधन है। यदि समाज के अधिकांश लोग पढ़ लिख जाएं तो उनमें इच्छाएं और अविश्कार की प्रवृत्तियाँ अवतरित होगी और उनकी पूर्ति के लिये नये साधनों का विकास होगा।

शिक्षा के द्वारा मनुष्य आत्म नियन्त्रण सीखता है और अनुशासन प्राप्त करता है। इसके अतिरिक्त वह उन सभी बातों को सीखता है जो उसे समाज में रहने योग्य बनाती है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि जिस समाज में, जिस देश में शिक्षा का जितना उच्च स्तर होगा, वहाँ उन्नति की रफ्तार भी उतनी ही तेज होगी। इसलिये हर अभिभावक का ये दायित्व बन जाता है कि बच्चों को उपयुक्त शिक्षा दिलाने में अपनी पूरी जिम्मेदारी निभायें और बच्चों के भविष्य के प्रति न्याय करें। प्लेटों ने शिक्षा को बच्चों में सद्‌गुणों का निर्माण कहा है शिक्षा व्यक्ति को इस योग्य बनाती है कि वो अपनी समस्त जीवन क्रियाओं को उचित रीति से सम्पादित कर सके। इसलिये भी जीवन में शिक्षा की आवश्यकता होती है।

***

अध्याय - 3

शिक्षित जनता तथा प्रजातन्त्रीय राष्ट्र

भारत में प्रौढ़ शिक्षा की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। यह उतनी ही पुरानी है, जितनी स्वयं हमारी सभ्यता, जहाँ तक आधुनिक युग की बात है, इसकी शुरूआत मैसूर और वड़ोदरा जैसे देशी रजवाड़ों से हुई और 1988 में यह 'राष्ट्रीय साक्षरता मिशन' तक अपना सफर तय कर चुकी है। इस दौरान इसके नाम, काम, क्षेत्र, नीति, कार्यक्रम और दृष्टिकोण – इन सभी में यहाँ तक कि इसकी संकल्पना में भी परिवर्तन आए हैं और अनेक प्रयोग किए गए हैं। इस नई राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा नीति (राष्ट्रीय साक्षरता मिशन) के अन्तर्गत सन् 1995 तक सम्पूर्ण राष्ट्र को साक्षर करने का संकल्प लिया गया था। इसके उद्देश्यों की भूरि–भूरि प्रशंसा की जानी चाहिए क्योंकि इसमें 'समयबद्ध' तथा 'लक्ष्य–आधारित' कार्यक्रम का समावेश किया गया है।

इस कार्यक्रम में साक्षरता में आत्म–निर्भरता, अपनी गरीबी और पिछड़ेपन से सचेत होकर अपनी आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति को बेहतर बनाने के लिए संगठित होकर सक्रिय सहभागिता के लिए आगे आना, अपनी आर्थिक स्थिति को बेहतर बनाने के लिए कला कौशल में दक्षता प्राप्त करना, समाज में वैयक्तिक विकास करने के लिए राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करना, छोटे परिवार के दृष्टिकोण को अपनाना, आसपास के पर्यावरण को स्वास्थ्यपरक बनाना, महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार दिलाना आदि मुद्दों को शामिल किया गया है। दरअसल, कार्यात्मक साक्षरता का उद्देश्य केवल अक्षर ज्ञान कराना ही नहीं है, बल्कि इसके माध्यम से लोगों को आर्थिक विकास के मार्ग पर अग्रसर करना है।

प्रौढ़ शिक्षा समेकित–विकास के रूप में – हम सब जानते हैं कि हमारे निरक्षर प्रौढ़ मात्र अक्षर–ज्ञान प्राप्त करने के इच्छुक नहीं होते। ये कला कौशल सीखकर रोजगार के क्षेत्र में आगे बढ़ना चाहते हैं। समाज में अपना सम्मानजनक स्थान पाना चाहते हैं। अतः हमें प्रौढ़ शिक्षा को कार्यात्मकता से जोड़कर इसे सामाजिक तथा आर्थिक उत्थान का अंग बनाना पड़ेगा। प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम

को राष्ट्रीय विकास की योजनाओं से जोड़ना होगा, तभी इसको सफलता मिलेगी।

आज भी हमारे देश की अधिकांश जनता गरीबी और पिछड़ेपन का शिकार है। अतः वह साक्षरता अभियान किस काम का जो इस समस्या को हल करने की अपने अन्दर क्षमता न रखता हो। अतः प्रौढ़ शिक्षा अथवा साक्षरता अभियान को प्रत्यक्ष रूप से या अन्य एजेंसियों की मदद से आय–उत्पादन करने वाले कार्यकलापों के साथ जोड़ना ही होगा।

शैक्षणिक संस्थाओं की भूमिका – सीमित साधनों के बावजूद हमें प्रौढ़ शिक्षा अभियान में स्वैच्छिक संस्थाओं की मदद लेनी ही होगी। ग्रामीण स्कूलों को अपनी चार दीवारी से बाहर निकल कर गांव के आम बच्चों को अनौपचारिक शिक्षा तथा प्रौढ़ों को प्रौढ़ शिक्षा प्रदान करने के लिए आगे आना होगा। गांवों से निरक्षरता मिटाने के लिए उन्हें सक्रिय होना ही पड़ेगा। इसके लिए स्कूलों के अध्यापकों को उनकी वर्तमान जिम्मेदारियों को निभाने के साथ–साथ उन्हें अनौपचारिक एवं प्रौढ़ शिक्षा का कार्यक्रम चलाने के लिए प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। विश्वविद्यालयों में तथा महाविद्यालयों के शिक्षकों तथा छात्रों को भी इस अभियान में भागीदार बनाना होगा। केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड ने इसकी शुरूआत की है। बोर्ड ने अपने पाठ्यक्रम में निरक्षरों को साक्षर बनाने के विषय को शामिल किया है। देश के अन्य बोर्ड़ो को भी सक्रिय रूप से ऐसा कदम उठाना चाहिए। बालकों को इस दिशा में प्रोत्साहित करने के लिए परीक्षा म अतिरिक्त अंक देने का प्रावधान रखना चाहिए। इसके बिना छात्र कोई रूचि नहीं लेंगे।

महिलाओं के लिए प्रौढ़ शिक्षा – आज हमारे देश में निरक्षर महिलाओं की जो संख्या है उससे हम परिचित हैं। कोई भी देश और उसका प्रजातन्त्र तथा मानव–समुदाय उस समय तक उन्नति या विकास नहीं कर सकता जब तक वहां की महिलाएँ शिक्षित न हों।

महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक तथा कानूनी एवं संवैधानिक अधिकार और बराबरी का दर्जा दिलाने के लिए, उन्हें आत्मनिर्भर बनाने के लिए शिक्षित करना ही होगा। इसकी पहले निरक्षर महिलाओं को साक्षरता अभियान में सक्रिय रूप में शामिल की जानी चाहिए। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस मुद्दे को सर्वाधिक महत्व दिया जाना चाहिए।

स्वैच्छिक प्रयास – प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में स्वैच्छिक संस्थाओं ने जो ऐतिहासिक

भूमिका निभायी है, उससे हम सब परिचित हैं। अब भी उनका भरपूर सहयोग एवं लाभ लिया जाना चाहिए। चूंकि सरकार ही प्रौढ़ शिक्षा कार्य के लिए वित्तीय सहायता देती है, अतः उसे स्वैच्छिक संस्थाओं को भरपूर वित्तीय सहायता देने के लिए आगे आना चाहिए। वैसे सम्मेलनों, विचार–गोष्ठियों और सार्वजनिक मंचों पर तो सरकार स्वैच्छिक संस्थाओं तथा उनके प्रयासों की सराहना और प्रशंसा करने में बढ़–चढ़कर भाग लेती हैं, लेकिन व्यवहार–रूप में उनका रवैया बेहद हतोत्साहित करने वाला होता है। फिलहाल तो इस सन्दर्भ में सरकार द्वारा कम से कम अवसर देना, अनुदान प्राप्त संस्थाओं को भयभीत करते रहना, उनके रोजमर्रा के कामकाज में टांग अड़ाना, अपनी अफसरशाही का रोब जमाना आदि आम बात है। कोई भी आन्दोलन मात्र सरकारी प्रयासों से आज तक सफल नहीं हुआ हैं, न कभी होगा। प्रौढ़ शिक्षा के सन्दर्भ में यह बात विशेष रूप से लागू होती है।

स्वैच्छिक संस्थाओं को अपनी भूमिका अच्छी तरह निभाने का अवसर सरकार को देना ही पड़ेगा। राष्ट्रीय साक्षरता मिशन में मात्र दस प्रतिशत अंश ही स्वैच्छिक संस्थाओं के लिए रखा गया था। यह स्थिति किसी दृष्टि से ठीक नहीं है। अपेक्षित सफलता के लिए इसे समाप्त करके अधिकाधिक अवसर देने की नीति बनानी होगी। स्वैच्छिक संस्थाओं को प्रशासनिक व्यय के लिए धन राशि नहीं देने की नीति को भी त्यागना पड़ेगा, तभी वे अपनी कठिनाई को हल करने में सफल होंगी।

सरकार द्वारा मुट्ठी भर स्वैच्छिक संस्थाओं को ही प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम में भागीदार बनाने का निर्णय भी अत्यन्त आपत्तिजनक है। उसे हर छोटी–बड़ी विश्वसनीय संस्थाओं की मदद लेनी चाहिए। हां, उन्हें दिये जाने वाले धन के सदुपयोग की जांच पड़ताल करने पर किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

सम्पूर्ण साक्षरता की निर्दिष्ट राहें – 'सम्पूर्ण साक्षरता' से तात्पर्य 80 से 85 प्रतिशत साक्षरता से लिया जा रहा है। सम्पूर्ण साक्षरता के लक्ष्य को प्राप्त करने के कई तरीके या मार्ग हो सकते हैं। मेरे विचार में, इसके लिए 'केन्द्र आधारित' तरीका ही श्रेष्ठ है। माना कि इसमें पूर्ण सफलता नहीं मिल पाई है। इसमें अनेक खामियां एवं कमजोरियाँ रही हैं। हालांकि उन सब को दूर किया जा सकता है, लेकिन सरकारी मशीनरी ऐसा न करके नये मार्ग निकाल रही है। 'केन्द्र' के बजाय 'स्वयंसेवकों' को माध्यम बनाया जा रहा हैं। विश्वविद्यालयों तथा स्कूलों के छात्रों द्वारा ''एक सिखाए एक'' कार्यक्रम पर पूरी ताकत लगाई

जा रही है। परन्तु छात्रों द्वारा किये जा रहे इस कार्यक्रम की सफलता में पूर्ण विश्वास नहीं किया जा सकता। 'राष्ट्रीय साक्षरता मिशन' के दस्तावेज में केन्द्र आधारित साक्षरता शिक्षण कार्यक्रम में 56 प्रतिवेदन प्रस्तुत किये गये हैं, उनमें खामियों को तो गिनाया गया है परन्तु उनके कारणों तथा समाधान के लिए उपाय नहीं बताये गये हैं। फलतः कुल मिलाकर मात्र भ्रम पैदा करने की स्थिति बना दी गई है। राष्ट्रीय साक्षरता मिशन में पूर्वनिर्धारित कार्य–प्रणाली तथा बजट में थोड़ा परिवर्तन अवश्य किया गया है, जिससे लगता है कि इसमें प्रौढ़ शिक्षा की भावी क्रियान्विति में कोई कारगर तेजी आएगी।

मेरे विचार में कोई एक पद्धति, उपाय, तरीका अथवा कार्यप्रणाली ही सर्वश्रेष्ठ है, यह मान्य तथ्य नहीं है। प्रौढ़ों को अलग समूहों और क्षेत्र विशेष के हालात के आधार पर ही कार्य प्रणाली को लागू किया जाना चाहिए। जहाँ जो कार्य प्रणाली अधिक लाभदायक समझी जाए वहाँ उसका ही उपयोग किया जाए। जहाँ 'केन्द्र आधारित' प्रणाली ठीक लगे वहाँ 'जन अभियान' प्रणाली ठीक लगे वहाँ, और जहाँ 'एक सिखाए एक' प्रणाली ठीक लगे वहां उसे प्रयोग में लाया जाना चाहिए।

उत्तर साक्षरता तथा सतत् शिक्षा – नवसाक्षरों को साक्षर बनाने के बाद उन्हें 'उत्तर साक्षरता' कार्यक्रम से जोड़ना अति आवश्यक है, क्योंकि इसके अभाव में उनके पुनः निरक्षर हो जाने का खतरा है। महाराष्ट्र की 'ग्राम शिक्षण मुहिम' की मिसाल हमारे सामने है।

साक्षरता मुहिम शुरू करते समय ही उत्तर साक्षरता की आवश्यकता का भी खाका बना लेना चाहिए। अच्छा तो यह होगा कि साक्षरता शिक्षण तथा उत्तर साक्षरता के लिए समयबद्ध कार्यक्रम शुरू में ही बना लिया जाए। केरल राज्य के 'सम्पूर्ण साक्षर' हो जाने की घोषणा हो चुकी है, वहाँ उत्तर साक्षरता का कार्यक्रम चल रहा है।

'जन शिक्षण निलयम' की योजना इस क्षेत्र में लाभदायक एवं कारगर योजना है। हर गांव में इसकी स्थापना की जानी चाहिए। साथ ही यह जरूरी है कि इसके सफल संचालन के लिए 'पूर्णकालीन' प्रेरक रखे जाएं। वर्तमान अंशकालीन प्रेरकों को नाममात्र मानदेय में रखकर इसका संचालन करवाना लाभदायक सिद्ध नहीं होगा।

हमारी समस्या मात्र निरक्षरों को अक्षर ज्ञान कराना अथवा कुछ अंकों की गिनती सिखा देना मात्र नहीं है। हमें तो उन्हें अपने व्यक्तित्व का विकास

करने के योग्य बनाना है, उन्हें उनकी क्षमताओं को जानने तथा उनकी मदद से समाज में अपना स्थान पाने योग्य बनाना है।

कुल मिलाकर प्रौढ़ शिक्षा मुट्ठी भर लोगों का काम नहीं है। यह सारे राष्ट्र का काम है। आज बड़ी जरूरत राष्ट्र को एक संगठित एवं मजबूत राष्ट्र बनाने की है। राष्ट्र को खण्ड–खण्ड विभाजित होने से बचाना है। प्रौढ़ शिक्षा इस सन्दर्भ में एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम है। यहाँ यह बताना उचित समझता हूँ कि शिक्षित जनता ही एक स्वस्थ तथा सुन्दर प्रजातन्त्रीय राष्ट्र का निर्माण कर सकती है। अतः राष्ट्र के हर नागरिक को शिक्षित करना ही होगा। इसके लिए अनेक कदम उठाये जा सकते हैं। उदाहरण के लिए राजस्थान में 'पंचायत राज' की योजना में सरपंच के चुनाव हेतु उम्मीद्वार का साक्षर होना अनिवार्य कर दिया गया है? माना कि यह एक छोटा सा प्रयास था परन्तु इसी प्रकार के प्रयासों द्वारा सम्पूर्ण देश को शिक्षित बनाया जा सकता है।

***

अध्याय - 4

भारतीय शिक्षा दर्शन के संदर्भ में वर्तमान शिक्षा

21 वीं शताब्दी का प्रारंभ हो गया है। राष्ट्र ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद विगत 66 वर्षों में समाज के प्रत्येक क्षेत्र में अच्छी प्रगति की है। विश्व में हमने अपना उचित स्थान बनाने का प्रयत्न किया है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय हमारा राष्ट्र कई सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनैतिक समस्याओं से ग्रसित था। देश की विकास यात्रा के साथ–साथ कई समस्याओं के समाधान का प्रयत्न किया गया तो साथ ही कई नई समस्याओं का भी जन्म हुआ है। समाज आज संक्रमण काल के दौर से गुजर रहा है। हम आज प्राचीन और अर्वाचीन के द्वन्द्व में उलझे हुए हैं। राजतन्त्रीय व्यवस्था की समाप्ति के बाद प्रजातंत्रीय व्यवस्था हमें मिली है। परन्तु केवल मात्र व्यवस्था बदलने से समाज नहीं बदलता। जनसाधारण के संस्कार, मनोवृत्ति और काम करने के तौर–तरीके वही पुराने हैं। सरकार के तीनों अंगों व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका में जो लोग लगे हुए हैं उनका शिक्षण–दीक्षण और कार्य करने का तौर तरीका वही राजतंत्रीय व्यवस्था के जमाने का है। इसका मूल कारण आज के सन्दर्भ में उन्हें शिक्षित करने का अभाव रहा है। यह नहीं कहा जा सकता कि इसे दूर करने के करने के कोई प्रयत्न नहीं हुए हैं– परन्तु आधे अधूरे मन से।

हम कैसा समाज चाहते हैं ? जिन व्यक्तियों से हमारा समाज बना है उन्हें कल्पित समाज के अनुकूल बनाना है। परन्तु सबसे महत्वपूर्ण बात समाज की कल्पना का स्पष्ट होना है। जनतंत्रीय समाज की बात हम सब करते हैं परन्तु जैसा जनतन्त्र आज हम देख रहे हैं और भुगत रहे हैं–यदि यही सच्चा जनतन्त्र है तो हमें ऐसा जनतन्त्र नहीं चाहिये। सच्चा जनतंत्र जनता के लिये, जनता के द्वारा और जनता का होता है, वर्तमान जनतंत्र क्या इस कसौटी पर सही उतरता है? महान् दार्शनिक अरस्तु के अनुसार यदि जनतंत्रीय प्रणाली में जनता सुशिक्षित नहीं है और वह अपने अधिकार का प्रयोग जनता के लिये नहीं कर स्वार्थ साधने हेतु करती है तो उसे जनतंत्र कैसे कहा जा सकता है? वोटों

की खरीद फरोख्त में आर्थिक प्रभाव, धार्मिक शोषण, अपराधी तत्वों का वर्चस्व और शिक्षा का अभाव मुख्य कारण है। यही सब कुछ तो हमारे जनतंत्र पर आज हावी हो रहे हैं। अरस्तु के अनुसार इस प्रकार के जनतंत्र को विकृत प्रजातंत्र ही कहा जायेगा जो जनता का नहीं है जो जनता के लिये नहीं है और जो जनता द्वारा सही मायने में संचालित नहीं है। इस प्रकार के जनतंत्र को जनतंत्र नहीं कह कर उसका राजनीतिकरण ही कहा जा सकता है।

भारत वर्ष के लिये इस सदी की यही महान् चुनौती है। शिक्षा प्रजातंत्र की नींव का पत्थर है। आज समाज के प्रत्येक वर्ग के लिये अच्छी शिक्षा देने की बात करना आम रिवाज हो गया है। समाज के प्रत्येक नागरिक को समाज के भावी विकास और राष्ट्र की एकता और अखण्डता के लिये आदर्श नागरिक बनाने की दृष्टि से अच्छी शिक्षा मिलनी ही चाहिए इसमें दो राय नहीं हो सकती। परन्तु अच्छी शिक्षा से क्या तात्पर्य है?

शिक्षा का दर्शन वर्तमान संदर्भ में उसकी सार्थकता राष्ट्रीय शिक्षा नीति उसकी क्रियान्विती और पद्धति मूल्यांकन, शोध खोज आदि ऐसे बिन्दु है जिन पर विचार करना ही होगा। वर्तमान शिक्षा हमारे आज के समाज और राष्ट्र के अनुकूल है या नहीं इसे समझना होगा। भारत में आज जो शिक्षा का स्वरूप है उसका आधार ब्रिटिश शिक्षा व्यवस्था है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत व्यक्ति को अक्षर ज्ञान और नौकरी प्राप्त करने के लिये प्रमाण पत्र देने का ही मुख्य उद्देश्य रहा है। इस शिक्षा ने हमारी शिक्षा व्यवस्था को सम्पूर्ण रूप से समाप्त किया है। उस समय की शिक्षा व्यवस्था का मूल उद्देश्य मनुष्य को समुदाय और समाज का एक उपयुक्त नागरिक बनाना था। शिक्षा का उद्देश्य मानवीय मूल्यों और भारतीय संस्कृति के आधार पर समाज में भावनात्मक एकता बनाये रखना तथा राष्ट्र को स्थिरता अखण्डता और जनतंत्रीय आधार को मजबूत करते हुए राष्ट्र का विकास करना रहा है। ब्रिटिश साम्राज्य के समय शिक्षा का प्रचार प्रसार तो बहुत हुआ। परन्तु उसका उद्देश्य कुछ और ही था। हमारे स्वतंत्रता आन्दोलन के सभी अग्रणी नेता ब्रिटेन और अन्य पाश्चात्य देशों में ही शिक्षित हुए हैं। उन्होंने वहीं की जनतंत्रीय परम्पराओं और नागरिकों की स्वतंत्रता और राष्ट्रीय विकास में उनकी भागीदारी को समझा और उससे प्रेरणा प्राप्त कर भारतवर्ष में उसी की प्राप्ति के लिये आन्दोलन चलाया। इसे विधि की विडंबना ही कहा जायेगा कि जो कुछ इन देशों के नागरिकों को प्राप्त था उससे अपने अधीन

देशों के नागरिकों को वंचित रखना तथा उन्हें और उन राष्ट्रों को उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये केवल मात्र साधन की तरह उपयोग में लाना कहां तक उचित था?

अपनी राष्ट्रीय और आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति और सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा के लिये दूसरे अधीनस्थ राष्ट्रों की संस्कृति, साधन सुविधाओं, प्रशासनिक तंत्र और शिक्षा दर्शन को समाप्त कर उसके मूल्यों को समाप्त करना और उनके सभी साधनों का अपने हित के लिये उपयोग में लाना क्या उचित था? इन सभी बातों का हमारे नेताओं पर बहुत असर पड़ा। पाश्चात्य देशों में शिक्षित होकर उन्हीं उद्देश्यों के लिये और स्वतंत्रता के लिये उन्होंने जी जान से स्वतंत्रता के आन्दोलन में भाग लिया, देश के जनमानस को इसके लिये जागृत किया, उसमें राष्ट्रीय भावना पैदा की और आजादी की लड़ाई की अलख जगायी तथा उसे क्रान्ति का रूप दिया। महात्मा गांधी के नेतृत्व में यह आन्दोलन भारतीय दर्शन के अनुरूप सत्य, अहिंसा, सहिष्णुता, धर्मनिरपेक्षता और मानवीय मूल्यों के आधार पर चलाया गया। विश्व के लिये यह आश्चर्य ही था कि भारत ने इसी आन्दोलन के द्वारा विश्व के तत्कालीन सबसे बड़े एवं शक्तिशाली साम्राज्य को अपने यहाँ से बिना खूनी क्रान्ति के शान्तिपूर्वक समाप्त करवा दिया। भारतीय मानवता की यह 20 वीं शताब्दी की एक महान् उपलब्धि रही है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् राष्ट्र ने आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक वैज्ञानिक, तकनीकी, स्वास्थ्य और शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। भौतिक विकास निश्चित रूप से हुआ है परन्तु उसकी तुलना में मानवीय मूल्यों का ह्रास भी निरन्तर होता रहा है। हमारा जनतंत्रीय आधार वास्तविक न होकर विकृत होता गया है। उसने अपने सैद्धान्तिक स्वरूप को खो दिया है। हमारा जनतंत्र निरंतर मूल्य विहीन होकर व्यापार के रूप से चलाया जाने लगा है। उसमें वे सभी आपराधिक तत्व सम्मिलित होते गये हैं जिससे समाज का आधार ही कलुशित होने लगा है। हिंसा, गुंडागर्दी, खरीद–फरोख्त आदि सभी कुछ तो हो रहा है। आज की राजनीति भले आदमियों की चीज नहीं रही है। यही कारण है कि आपराधिक तत्व राजनीति में आगे चलकर शासन पर हावी होते चले जा रहे हैं। यदि समय रहते इस पर गहराई से विचार कर उचित कदम नहीं उठाये गये तो हमारा भविष्य और भाग्य क्या होगा कहा नहीं जा सकता। मेरी सम्मति में अच्छी शिक्षा ही इस समस्या के हल का एक सशक्त माध्यम हो सकता है। इसके लिये वास्तविक राष्ट्रीय शिक्षा नीति हमें बनानी होगी। स्वतंत्रता

के बाद इस और कई प्रयास किये गये, कई आयोग बने और उनके प्रतिवेदनों के आधार पर कुछ कार्य भी हुआ परन्तु अभी भी हमारी, संस्कृति, दर्शन और सामाजिक आवश्यकता के अनुसार पूर्ण रूप से उसे ढाला नहीं जा सकता हैं। भारतीय दर्शन में शिक्षा का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति का सर्वांगीण विकास रहा है। शिक्षा का उद्देश्य केवल बौद्धिक विकास ही नहीं है जैसा कि सामान्यतः आज माना जा रहा है। व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में उसकी बुद्धि, हृदय (संवेदनशीलता और मानवीय मूल्य) और श्रम (रोजगार और परिवार, समुदाय एवं सामाजिक उत्थान) आदि सभी का समान रूप से विकास है। शिक्षा को सिर्फ निश्चित अभ्यास क्रमों एवं विद्यालयों की कक्षाओं तक सीमित रखना कभी नहीं रहा। उसे प्रकृति, जनसमुदाय और समाज से जोड़े रखा गया। इस पद्धति का क्रियान्वयन आश्रमों द्वारा किया जाता रहा है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में हेड़ हार्ट और हेंड्स की बात जब की जाती है तो उसका मतलब व्यक्ति के सर्वांगीण विकास की इसी परिकल्पना से है। स्वामी विवेकानन्द, गांधी, विनोबा आदि ने राष्ट्रीय शिक्षा का आधार इसी परिकल्पना और उद्देश्य को माना है। वर्तमान शिक्षा नीति में ज्ञान और काम का दृष्टिकोण इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये है जिसमें बौद्धिक विकास के साथ श्रम एवं मानवीय मूल्य और संवेदनशीलता का समावेश किया गया।

भारत हमेशा से कृषि प्रधान देश रहा है। तथाकथित उन्नत औद्योगिक राष्ट्रों के संगठित श्रम या केवल नौकरी के लिये डिग्री देने का शिक्षा का उद्देश्य हमारा नहीं हो सकता। यहाँ शिक्षा व्यक्ति, परिवार, समुदाय और समाज के समानान्तर विकास की कड़ी रही है। वह केवल व्यक्ति को अक्षर–ज्ञान देने तक ही सीमित नहीं रह सकती। वह व्यक्ति और उसके द्वारा समाज की उन्नति के साथ जुड़ी हुई है। यही कारण है कि भारत वर्ष का नागरिक अक्षरज्ञान के अभाव में भी जीवन की शिक्षा द्वारा समुदाय और समाज का विकास करता रहा है। नियमित और निश्चित अभ्यास क्रमों की पूर्ति करने वाले विद्यालयों, महाविद्यालयों, तकनीकी संस्थाओं के अभाव में भी ग्रामीण स्तर पर अनौपचारिक माध्यमों के द्वारा घरेलु और आवश्यक कुटीर और छोटे धन्धों का ज्ञान नागरिकों को दिया जाता रहा है। इसका बहुत बड़ा लाभ यह था कि नागरिक शिक्षा के लिये गांव छोड़कर दूरस्थ स्थापित विद्यालयों में न जाकर ग्रामीण स्तर पर ही अपने धन्धों एवं समुदाय से जुड़े रहकर आवश्यक सामान्य ज्ञान प्राप्त करते रहे। नई शिक्षा नीति में इन महत्वपूर्ण बिन्दुओं का समावेश कर

ग्रामीण स्तर पर नागरिकों को उचित शिक्षा दिये जाने का प्रयास रहा है।

उक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिये सर्वजनिक शिक्षण संस्थाओं, गैर–सरकारी शिक्षा संगठनों, पंचायतराज संस्थाओं, सरकारी विभागों और सभी प्रमुख वर्गों का सहयोग और कार्य में समन्वय की आवश्यकता है। ये सभी एक–दूसरे के कार्यों में पूरक की भांति योगदान दें, तभी वांछित सफलता मिल सकती है। कोठारी कमीशन और 1986 की नई–शिक्षा नीति ने इस ओर अवश्य ही नया आधार दिया है। हमारी सरकार की प्राथमिकताओं में शिक्षा हमेशा ही नीचे के स्तर पर रही है। जबकि बिना अच्छी शिक्षा के नागरिकों को समाज के आदर्श नागरिकों की भांति तैयार किया ही नहीं जा सकता। हमारी राष्ट्रीय शिक्षा नीति में समाज, समुदाय और व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के आयाम सुनिश्चित होने चाहियें। वैज्ञानिक, तकनीकी और अन्य विषय पर विदेशों में जो शोध–खोज एवं कार्य हुए हैं उन्हें निश्चित ही अपनाना होगा। हम विश्व के अन्य देशों की तुलना में पीछे नहीं रह सकते और अच्छी चीज का आदान प्रदान होना ही चाहिए परन्तु उसे ग्रहण करते समय हमें अपना दार्शनिक और सांस्कृतिक आधार नहीं छोड़ना चाहिये। हमारी संस्कृति हमारी आत्मा है। यदि हमने उसे भुला दिया, छोड़ दिया या विकृत कर दिया तो हम स्वयं समाप्त हो जायेंगे या विश्व के शक्तिशाली देशों के पिछलग्गू बन जायेंगे। अपनी संस्कृति ही प्रत्येक देश की अपनी पहचान होती है। आज तथाकथित शक्तिमान राष्ट्र कमजोर राष्ट्रों पर भौतिक दृष्टि से आधिपत्य नहीं कर उन्हें आर्थिक, तकनीकी और सांस्कृतिक आधार पर अपने वर्चस्व में लाने के प्रयत्न करते हैं। अतः हमें इस ओर सावधान रहना होगा।

***

अध्याय - 5

राष्ट्रीय शिक्षा नीति तथा उसकी प्रगति

राष्ट्रीय शिक्षा नीति का आधार स्वतंत्रता संग्राम के दौरान हमारे देश के महान नेताओं ने हमें दिया है। हमारे तत्कालीन राष्ट्र नायक यह अच्छी तरह से जानते थे कि केवल भीड़ इकट्ठी करने मात्र से राष्ट्र में क्रान्ति नहीं लाई जा सकती। क्रांति का उद्देश्य स्पष्ट होना चाहिये। उसके लिये जनमानस को जागृत करना पड़ता है तथा उसके अनुकूल उन्हें शिक्षित करना होता है। इसके लिये व्यक्तियों को आश्रमीय शिक्षा के आधार पर जीवनोपयोगी शिक्षा देनी होगी। शिक्षा का आधार गुरू शिष्य और समुदाय के बीच जीवन्त समन्वय है। ये सभी एक दूसरे के पूरक के रूप में कार्य करते हैं। समाज की आवश्यकता के अनुरूप शिक्षा व्यवस्था में शिष्य समाज के एक अंग की भांति ही विकसित होता है।

आज की शिक्षा–व्यवस्था में स्वांतः सुखाय का दृष्टिकोण ज्यादा है। यह शिक्षा व्यक्ति को व्यक्तिवादी बनाती है। समष्टि और व्यष्टि में समन्वय नहीं है। इस शिक्षा व्यवस्था में व्यावसायिक आधार पर पृथक समूह उभर रहे हैं जिससे सामूहिक जीवन जीने की व्यवस्था बिखरने लगी है। लोग व्यवसाय और जीवन यापन के लिये तथा कार्य खोजने की दृष्टि से शहरों की ओर भाग रहे हैं। पुराने ग्रामीण धन्धे समाप्त हो रहे हैं जीवन स्तर को ऊँचा करने के नाम पर प्रत्येक ग्रामीण आधारित चीजों का परित्याग किया जा रहा है। ग्रामीण और कुटीर उद्योग एक प्रकार से समाप्त हो रहे हैं। प्रशासन की ग्रामीण व्यवस्था खत्म हो गई है। ग्राम्य संस्थाएं जो गांवों के विकास की धुरी थी, समाप्त कर दी गई हैं। पंचायतीराज का बुनियादी ढांचा सम्पूर्ण रूप से बदल गया है। सामूहिक जीवन शैली समाप्त सी हो गई है। यह सब कुछ वर्तमान शिक्षा और तथाकथित आधुनिक जीवन के प्रति नई पीढ़ी के दृष्टिकोण का प्रतिफल है। भारतीय अस्मिता और आत्मा इस प्रकार धीरे–धीरे लोपित हो रही है। आधुनिक वैज्ञानिक तकनीकी, विकास, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों और विश्व बन्धुत्व नागरिकों में राष्ट्रीय चेतना, देश प्रेम, धार्मिक सहिष्णुता, सामाजिक समानता, धर्म निरपेक्षता

और राष्ट्रीय अखण्डता आदि के लिये शिक्षा के माध्यम से तैयार करने का महात्मा गांधी के नेतृत्व में अनवरत रूप से कार्य किया गया। स्वतंत्रता संग्राम हमारे लिये केवल अंग्रेजी–साम्राज्य को भारत वर्ष से हटाने का राजनैतिक युद्ध नहीं था, वह एक सामाजिक जनक्रांति थी जिसके द्वारा नागरिकों को राष्ट्र के भावी नागरिक के रूप में तैयार करना था।

इस कार्य के लिये देशभर में जगह–जगह आश्रम पद्धति के आधार पर शिक्षा केन्द्रों की स्थापना की गई। माहात्मा गांधी ने दक्षिण अफ्रीका से आने के बाद अहमदाबाद में साबरमती के तट पर एक आश्रम स्थापित किया। वहाँ उन्होंने राष्ट्र के लिये हजारों कर्मठ, परिश्रमी कार्यकर्ताओं को तैयार किया। इन कार्यकर्ताओं में गांधीजी के जीवन की अमिट छाप थी। स्वावलम्बन, सत्यनिष्ठा और अहिंसा की भावना उनमें कूट–कूट कर भरी हुई थी।

साबरमती के बाद गांधीजी ने वर्धा में अपना आश्रम स्थापित किया। वहाँ उन्होंने राष्ट्रीय शिक्षा नीति निर्धारण का कार्य और कई प्रयोग किये। शिक्षा की वर्धा स्कीम हमारी शिक्षा नीति का मूल आधार हो सकती है। बुनियादी शिक्षा ने जन साधारण के लिये ब्रिटिश काल की शिक्षा पद्धति से हटकर जन शिक्षण का नया आधार दिया परन्तु नौकरशाही के अंग्रेजियत की भावना एवं प्रभाव के कारण उसे मन, वचन और कर्म से स्वीकारा नहीं गया। वह हमारे देश का एक ऐसा समय था जबकि सारे राष्ट्र में गांधीजी की प्रेरणा से राष्ट्रीय शिक्षा के लिये अलग–अलग स्थानों पर कई प्रयत्न किये गये और आदर्श शिक्षा संस्थानों की स्थापना हुई। राष्ट्रीय शिक्षा के क्षेत्र में अहम् भूमिका एवं महत्वपूर्ण कार्य करने वालों में रवीन्द्रनाथ टैगोर, डॉ. जाकिर हुसैन, आचार्य नरेन्द्रदेव, डॉ. श्री मनुनारायण, प्रो. हमायू कबीर, प्रो. राम मूर्ति, डॉ. डी.एस. कोठारी, श्री जे.पी. नायक, श्री ईश्वरभाई पटेल आदि कई प्रतिभाओं का योगदान रहा है। राजस्थान में भी ऐसी प्रतिभाओं की कमी नहीं रही। श्री हरिभाऊ उपाध्याय, पं. जनार्दनराय नागर, डॉ. मोहनसिंह मेहता, श्री हीरालाल शास्त्री, श्री भेरूलाल गेलड़ा, श्री दयाशंकर श्रोत्रिय, श्री प्रेमनारायण माथुर आदि प्रमुख रहे हैं।

इन सभी शिक्षाविदों ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति के निर्माण और उसके क्रियान्वयन का अपने–अपने स्तर पर अच्छा कार्य किया है।

1986 की नई शिक्षा नीति राष्ट्रीय आवश्यकताओं और अपेक्षाओं के अनुरूप एक सही कदम है। इस शिक्षा नीति के आधार पर देश में शिक्षा की कुछ प्राथमिकता प्राप्त हुई है। पहली बार राष्ट्र में शिक्षा के लिये राजनैतिक

इच्छा शक्ति और संकल्प बना। केन्द्रीय सरकार ने सम्पूर्ण साक्षरता और सब के लिये शिक्षा का राष्ट्र–व्यापी कार्यक्रम देश भर में लागू करने की योजना बनाई। इसके लिये राष्ट्रीय साक्षरता मिशन की स्थापना की गई। इस मिशन के द्वारा राष्ट्र–व्यापी साक्षरता कार्यक्रम इस समय देश के अधिकांश जिलों में चलाया जा रहा है। आशा है कि शीघ्र ही देश के सभी जिले इस कार्य–क्षेत्र के अन्तर्गत ले लिये जायेंगे।

सब के लिये शिक्षा प्राप्ति का लक्ष्य 20 वीं सदी के अन्त तक प्राप्त करना था। अतः 21 वीं सदी में सभी बच्चों को प्राथमिक शिक्षा देने हेतु अनेक योजनाएँ चलाई जा रही है। विशेषकर महिलाओं और बच्चियों की शिक्षा पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है। ग्रामीण पिछड़े और परिगणित वर्गों के लिये लोक जुम्बिश, शिक्षाकर्मी योजना, अनौपचारिक शिक्षा, सतत् शिक्षा दूरस्थ शिक्षा योजना आदि अनेक कार्यक्षेत्र लागू किये गये हैं।

केन्द्रीय सरकार सबके लिये शिक्षा और सम्पूर्ण साक्षरता के लक्ष्य की पूर्ति के लिये राज्य सरकारों को वित्तीय तकनीकी और सभी प्रकार की सुविधाए प्रदान कर रही है। इसके लिये राष्ट्रीय प्रान्तीय और जिला स्तरों पर शिक्षा समितियों का गठन किया गया है और किया जा रहा है। स्वयंसेवी संस्थाओं का इन कार्यक्रमों में हर प्रकार से सहयोग प्राप्त किया जा रहा है। ब्लॉक और ग्राम्य स्तरों पर भी समितियों का गठन कर अधिक से अधिक लोगों को इन कार्यक्रमों से जोड़ा जा रहा है। इस प्रकार से शिक्षा के कार्य को जन क्रांन्ति के रूप में आगे बढ़ाये जाने के सभी प्रयत्न किये जा रहे हैं। शिक्षा के इस सारे परिश्रम में जो बात इस समय हमारे लिये चिन्ता का विषय है – यह है हिन्दी भाषी क्षेत्र में साक्षरता के प्रतिशत का कम होना। राष्ट्रीय साक्षरता के 64.8 प्रतिशत की तुलना में हिन्दी भाषी राज्यों में यह प्रतिशत बहुत कम है। यद्यपि राज्य सरकार इस समय शिक्षा के कार्य को प्राथमिकता के आधार पर आगे बढ़ा रही है। राजस्थान में सार्वजनिक शिक्षण संस्थाएँ बहुत हैं जो राष्ट्रीय आंदोलन के समय से ही शिक्षा एवं सामाजिक उत्थान के कार्यक्रमों में लगी हुई हैं। इस समय भी वे शिक्षा के इस पुनीत कार्य में अपना पूर्ण सहयोग दे रही है। कई नई संस्थाएं भी आरंभ हुई। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि हम सही रास्ते पर चल रहे हैं। परन्तु अभी बहुत कुछ करना है। शिक्षा के लक्ष्य की पूर्ति में अभी भी बहुत सी बाधाएँ हैं जिन्हें दूर करना होगा। उसके बिना शिक्षा और साक्षरता का यह आंदोलन जन आंदोलन नहीं बन सकेगा। खाना पूर्ति तो हो जायेगी

परन्तु वास्तविक सफलता प्राप्त नहीं हो सकेगी।

मेरी दृष्टि से निम्न बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक है –

1. अभी भी जन–साधारण शिक्षा को अपने लिये आवश्यक नहीं मानता। उसके लिये उसका महत्व अभी भी नगण्य है। इसके लिये जनचेतना का अभाव है – जिसे बढ़ाना होगा। चेतना के साथ–साथ शिक्षा के लिये मानसिकता बनानी होगी।
2. राजनैतिक इच्छा शक्ति बन जाने के बाद भी राजनीतिक एवं अभिजात्य वर्ग जन साधारण की शिक्षा को अपने लिये हितकर नहीं मानते। अतः ऊपरी तौर पर उसकी बात करते हुए भी मन से उसकी सफलता के लिये वांछित काम नहीं कर पा रहे हैं।
3. 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में गैर–सरकारी संस्थाओं को शिक्षा कार्यों में प्राथमिकता के आधार पर जोड़ने और उनके माध्यम से कार्य करने की बात कही गई है। देश में सैंकड़ों ऐसी संस्थाएँ हैं जिनका सहयोग अपेक्षित है। परन्तु अभी भी इन संस्थाओं का अपेक्षित सहयोग प्राप्त नहीं किया जा रहा है। कुछ इनी गिनी संस्थाओं को सुविधानुसार इस कार्यक्रम के साथ जोड़ा जाता है जो अनुचित है। बिना भेदभाव के गैर सरकारी संस्थाओं को इस कार्य के साथ जोड़ा जाना चाहिये।
4. जन–साधारण किसी भी योजना के साथ उस समय तक पूरी तरह अपने आपको जोड़ नहीं पाता जब तक उसे सरकारी कार्यक्रम मानकर चलता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से लागू सभी पंचवर्षीय योजनाओं में जन–साधारण से सम्बन्धित योजनाओं में जनता की सक्रिय भागीदारी का अभाव इसीलिये रहा कि वह सरकारी कार्यक्रम माना गया। जनता समझती रही कि यह तो सरकार का कार्य है, हमें क्या लेना देना है हमारा काम तो सिर्फ वोट देना है उसके बाद की सारी जिम्मेदारियां सरकार की होती हैं अतः उन्हें नागरिकों के अधिकारों और कर्तव्यों का ज्ञान कराना आवश्यक है। इसलिये प्रत्येक कार्य में जनता की भागीदारी सुनिश्चित करना जरूरी है।

आज भी आम आदमी शिक्षा प्रसार कार्य को अभिजात वर्ग द्वारा उनके शोषण के लिये या उन पर दया के आधार पर किया गया कार्य मानते हैं। इन सब बिन्दुओं पर व्यापक चिन्तन कर नई शिक्षा नीति के आधार पर व्यावहारिक दृष्टि से योजनाओं के क्रियान्वयन द्वारा ही सबको शिक्षा के लक्ष्य की प्राप्ति की

***

अध्याय - 6

जनतंत्र और सम्पूर्ण साक्षरता अभियान

सारे देश के राज्यों का साक्षरता की दृष्टि से अध्ययन किया जाये तो हमें पता चलता है कि अन्य राज्यों की तुलना में हिन्दी भाषी राज्य सबसे पिछड़े हुए हैं। राष्ट्रीय विकास में शिक्षा के महत्व को किसी भी स्थिति में भुलाया नहीं जा सकता। भारत वर्ष विश्व का सबसे बड़ा जनतंत्रीय देश है। समाज का प्रत्येक नागरिक यदि पढ़ा लिखा नहीं है तो भला वह स्वतंत्र देश में नागरिकों के कर्त्तव्यों और अधिकारों का निर्वाह कैसे कर सकेगा? अपनी सामाजिक जिम्मेदारियों का आज के परिप्रेक्ष्य में वहन कैसे कर सकेगा और अपनी स्थिति को कैसे सुधार सकेगा? साक्षरता व्यक्ति की प्रतिभा, क्षमता और व्यक्तित्व के विकास की धुरी है। साक्षरता के बिना मनुष्य के सोचने, समझने और बरतने की शक्ति का कभी भी विकास नहीं हो सकता। इसके अभाव में वह संकुचित दायरे में ही रहता है और दृष्टिकोण के विकास में कई दकियानूसी समस्याओं में उलझ कर विकास के मार्ग को अवरूद्ध कर देता है। निरक्षरता मनुष्य को दूसरे के विचारों और निर्देशों पर चलने को मजबूर करती है और इस तरह वह स्वतंत्र नागरिक के अपने मूलभूत अधिकारों से वंचित कर दिया जाता है। निरक्षता के कारण उसे अच्छे और बुरे में निर्णय करने की क्षमता नहीं रहती है और कई बार अनुचित निर्णय ले लेता है। इससे न केवल स्वयं का अपितु समाज और राष्ट्र का भारी नुकसान कर बैठता है। अतः साक्षरता को आज के युग में प्रत्येक नागरिक के लिये अनिवार्य आवश्यकताओं में प्राथमिकता के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिये।

यूनेस्को के अध्ययन के अनुसार यदि भारत में साक्षरता प्रसार कार्य को प्राथमिकता के आधार पर पूरे जोश के साथ लागू नहीं किया गया तो 20वीं सदी के अन्त तक विश्व में जितने निरक्षर व्यक्ति होंगे उनमें से आधे से ज्यादा भारत वर्ष में होंगे। जरा सोचें यदि यह स्थिति बन जाती है तो विश्व के अन्य देशों की तुलना में हम कहाँ होंगे ? विश्व के छोटे–छोटे देशों की तुलना में भी हम औद्योगिक और अन्य विकास कार्यों में बहुत पिछड़ जाएंगे। यही नहीं विश्व

समुदाय में हमारा कोई स्थान नहीं होगा। हमारी बात कोई नहीं सुनेगा और हमें छोटी–छोटी बातों के लिये भी दूसरों के ऊपर अवलम्बित रहना पड़ेगा।

भारत वर्ष का विश्व समुदाय में हमेशा से अपना महत्वपूर्ण स्थान रहा है। वह हमेशा ही विश्व का गुरू कहलाता रहा है। उसने विश्व को हमेशा दिशा–निर्देश दिया है। उसकी बातों एवं सुझावों को काफी महत्व दिया जाता रहा। उसने सारे संसार में अपनी सांस्कृतिक धरोहर–सभ्यता तथा मानवीय गुणों के कारण शान्ति, भाईचारा और एक दूसरे के प्रति सद्भावना और समन्वय बनाये रखा है। अनेकता में एकता हमारी संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग है। परन्तु आज स्थिति धीरे–धीरे विपरीत होती जा रही है। विशाल जनसंख्या के बढ़ते और निरक्षरता के रहते हम निरन्तर पिछड़ते चले जा रहे हैं।

महिला एवं बाल शिक्षा की स्थिति तो और भी विषम है। इससे समाज में महिलाओं और बच्चों का न केवल शोषण ही बढ़ रहा है वरन् समाज में कई सामाजिक बुराईयाँ भी बढ़ रही हैं। अतः साक्षरता प्रसार के कार्य को प्राथमिकता के आधार पर बढ़ाना ही होगा। वरन् ऐसी स्थिति बन जायेगी कि हम कहीं के नहीं रहेंगे। भारत सरकार ने इन सारी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए सन् 1978 में राजनैतिक इच्छा–शक्ति बनाई और राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम सारे देश में पहली बार प्राथमिकता के तौर पर प्रारंभ किया गया। इसके लिए बजट में 200 करोड़ का प्रावधान भी रखा गया। ऐसा नहीं है कि इसके पूर्व साक्षरता कार्यक्रम देश में नहीं चला। अलग–अलग राज्यों में सार्वजनिक शिक्षण संस्थाओं, विश्वविद्यालयों, सरकार तथा अन्य एजेन्सियों द्वारा यह कार्य किया जाता रहा है। परन्तु राष्ट्रव्यापी नीति निर्धारण कर सारे देश में एकरूपता एवं प्राथमिकता के आधार पर पहली बार 1978 में यह कार्य प्रारंभ करने का संकल्प किया गया जो सही दिशा में लिया गया सही कदम था। परन्तु यह कार्यक्रम जितना गतिशील बनना चाहिये था उतना नहीं बन सका। अतः मई 1988 में भारत सरकार द्वारा अपनी 1986 की नई नीति के आधार पर राष्ट्रीय साक्षरता मिशन की स्थापना कर इस कार्यक्रम को सारे देश में जोर शोर से लागू किया गया। इससे सारे देश में इस समस्या के प्रति लोगों में जागरूकता बढ़ी है। लोगों ने शिक्षा और विशेषकर साक्षरता की आवश्यकता को महसूस किया है और इस कार्यक्रम में सहयोग देना भी प्रारंभ हुआ है। देश में सम्पूर्ण साक्षरता हेतु अभी बहुत कुछ किया जाना है।

राष्ट्रीय साक्षरता मिशन की विशेषता केवल पुरुषों की साक्षरता को बढ़ावा देना मात्र नहीं है वरन् महिलाओं और बच्चों की शिक्षा को साथ–साथ आगे बढ़ाने का कार्यक्रम भी इससे जुड़ा हुआ है। भारत में बच्चों की शिक्षा की समस्या भी उतनी ही भयावह है जितनी कि साक्षरता। अतः हमारी भावी पीढ़ी साक्षर हो इसके लिये आवश्यक है कि बच्चों की शिक्षा का भी सार्वजनिकरण हो। हमारी समस्या यह है कि 94 प्रतिशत बच्चे स्कूलों में प्रवेश तो लेते हैं परन्तु धीरे–धीरे 60 प्रतिशत से ज्यादा बच्चे स्कूल छोड़ देते हैं। इससे न केवल ये बच्चे प्राथमिक शिक्षा से वंचित रह जाते हैं बल्कि देश में निरक्षरता का प्रतिशत भी बढ़ाते रहते हैं। अतः साक्षरता कार्यक्रम के साथ साथ बच्चों की शिक्षा को भी महत्व दिया जा रहा है। यह कार्य अनौपचारिक शिक्षा के माध्यम से भी किया जा रहा है।

साक्षारता प्रसार के इस कार्य में देश में केरल ने एक उदाहरण प्रस्तुत किया है। देश में सर्व प्रथम केरल राज्य का अर्नाकुलम जिला सम्पूर्ण साक्षर घोषित हुआ। इससे सारे देश में एक नई शुरूआत हुई और इस प्रकार की प्ररेणा एवं संदेश सम्पूर्ण राष्ट्र में पहुँचा। देश का केरल राज्य पहले सम्पूर्ण साक्षर होने वाला राज्य बना और यह कार्य धीरे–धीरे देश के सभी जिलों में पहुंच गया है।

सम्पूर्ण साक्षरता अभियान इस समय देश के सभी जिलों में चलाया जा रहा है। आशा है कि तेरहवीं पंचवर्षीय योजना के अन्त तक देश के सभी जिलों में यह अभियान पहुंच जायेगा। मार्च 2013 तक इस अभियान के माध्यम से देश में करोड़ निरक्षरों को साक्षर बनाया जा चुका है और 13वीं पंचवर्षीय योजना के अन्त तक शेष निरक्षरों को साक्षर बनाना है।

राजस्थान में संपूर्ण साक्षरता अभियान –

राजस्थान भी इस कार्य में पीछे नहीं है। देश के हिन्दी भाषी क्षेत्र में सर्व प्रथम साक्षरता अभियान का प्रारंभ राजस्थान के अजमेर जिले से हुआ। इस अभियान के द्वारा अजमेर जिले के 3.42 लाख निरक्षरों को साक्षर बनाया गया जो जिले का 89.81 प्रतिशत लक्ष्य रहा है और इस प्रकार अजमेर 1992 में उत्तरी भारत का प्रथम सम्पूर्ण साक्षर जिला बन गया। 1993 में वहाँ उत्तर साक्षरता का कार्यक्रम चलाया। इसी प्रकार आदिवासी क्षेत्र का डूंगरपुर जिला भी इसी अभियान के तहत सम्पूर्ण साक्षर घोषित हो चुका है। वहाँ साक्षरता का प्रतिशत 65.17 रहा है। यह जिला देश का प्रथम आदिवासी साक्षर जिला बन

गया है। राजस्थान में सम्पूर्ण साक्षरता अभियान की अजमेर और डूंगरपुर जिलों की सफलता और जन साधारण में इसके प्रति उत्साह एवं वातावरण को देखते हुए यह कार्य राज्य के अन्य कई जिलों में प्रारंभ कर दिया गया है। भरतपुर, सीकर, पाली जिलों में यह कार्य पुरा होने पर है जब कि टोंक, बाराँ, अलवर, उदयपुर और राजसमंद जिलों में सम्पूर्ण साक्षरता अभियान के अधीन ये परियोजनाए प्रारंभ हो चुकी है। इन जिलों में वातावरण निर्माण का कार्य पूरा हो चुका है तथा साक्षरता कार्य भी प्रारंभ हो गये हैं। ऐसी आशा है कि अगले वर्ष तक सारे राज्य में सम्पूर्ण साक्षरता अभियान कार्य प्रारंभ हो जायेगा। ऐसा लगता है कि उत्तरी भारत में राजस्थान को प्रथम सम्पूर्ण साक्षर राज्य बनने का सौभाग्य प्राप्त हो सकेगा। इसके लिए जनता, सरकार, सार्वजनिक शिक्षण संस्थाओं तथा अन्य संगठनों में आपसी सहयोग एवं समन्वय की आवश्यकता है।

अभियान एक जन आन्दोलन –

1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति और उसके आधार पर स्थापित राष्ट्रीय साक्षरता मिशन की आवधारणा में साक्षरता कार्यक्रमों में स्वैच्छिक संस्थाओं और संगठनों की उचित भागीदारी को सुनिश्चित किया गया है। सम्पूर्ण साक्षरता अभियान एक जन–आन्दोलन है – मिशन है। राष्ट्रीय अस्मिता एवं चैतन्य को आगे बढ़ाने का कार्यक्रम है। इसमें जन–साधारण की समझ, निष्ठा और भागीदारी यदि सुनिश्चित नहीं होगी तो यह कार्यक्रम कभी भी सफल नहीं होगा। राष्ट्रीय साक्षरता मिशन द्वारा प्रस्तुत आंकड़े भले ही आकर्षित लगते हो और सरकारी फाइलों और कागजों में सम्पूर्ण साक्षरता का लक्ष्य प्राप्त कर लिया जाये परन्तु वास्तविकता कुछ और ही होगी। 1978 के बाद प्रौढ़ शिक्षा और विशेषकर साक्षरता के कार्य के लिये राष्ट्रव्यापी राजनैतिक इच्छा शक्ति बनी है, उसके क्रियान्वयन के लिये संकल्प भी बना है परन्तु अभी भी उचित कार्य योजना का अभाव है। जन साधारण, पुरानी राष्ट्रीय शिक्षण संस्थाओं, ग्रामीण संगठनों और अनेक ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत कानूनी, सामाजिक और अन्य संगठनों का वांछित सहयोग इस कार्य के लिये अभी पूरी तरह प्राप्त नहीं किया जा सका है। ऐसा लगता है कि अभियान को भी सरकारी कार्यक्रम मानकर कुछ इने गिने लोगों के भरोसे चलाया जा रहा है। ऐसे लोग और संगठन जिनका शिक्षा कार्यों से कभी कोई संबंध नहीं रहा, सक्रिय रूप से इसमें लगा दिये जा रहे हैं। कुछ लोग एवं संगठन केवल आर्थिक लाभ के लिये इस कार्यक्रम से जुड़ते चले जा रहे हैं या जिन लोगों की कार्यक्रम के प्रभारी तक पहुंच है उन्हें ही इस कार्यक्रम

से जोड़ा जा रहा है। समाज में बहुत से ऐसे व्यक्ति और संगठन उपलब्ध हो सकते हैं जो इस प्रकार के कार्यक्रमों में सहयोग दे सकें, उनसे सम्पर्क कर उनका भी सहयोग प्राप्त किया जाना चाहिये। हमारे समाज में आज जो स्थिति बन रही है उसमें बहुत से अच्छे योग्य एवं प्रभावशाली लोग अनावश्यक झमेलों में पड़ने या किसी के पीछे पड़कर कार्य प्राप्त करने में रूचि नहीं रखते हों परन्तु हमें उन्हें सम्मानपूर्वक इस प्रकार के कार्यों के साथ निश्चित रूप से जोड़ना चाहिये। आज राष्ट्र व्यापी चेतना सम्पूर्ण साक्षरता अभियान के प्रति बन रही है, उसका लाभ उठाते हुए हमें समाज के इव पवित्र शिक्षा–यज्ञ में यथा शक्ति सहयोग देकर राष्ट्रीय कर्त्तव्य को निभाना चाहिए।

***

अध्याय - 7

निरक्षरता उन्मूलन के उपाय

उत्तरी भारत के राज्यों में तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो साक्षरता का प्रतिशत अन्य राज्यों की तुलना में बहुत कम है। महिला शिक्षा तो नहीं के बराबर है। यह ऐसी स्थिति है जो आज के इस वैज्ञानिक एवं जनतंत्रीय युग में राष्ट्र के विकास के लिए हानिकारक है। भारतीय समाज जो खानपान, रहन–सहन, रीति–रिवाज, बोल–चाल, भाषा आदि की दृष्टि से भिन्न है – उसके लिए तो साक्षरता और भी आवश्यक है। विभिन्नता में एकता की कड़ी शिक्षा ही है। भावनात्मक एकता के लिए साक्षरता अनिवार्य है।

प्राचीन काल में प्रौढ़–शिक्षा जो समाज शिक्षा के रूप में प्रचलित थी–उसका स्वरूप पूर्णरूपेण अनौपचारिक एवं स्थान और क्षेत्र विशेष तक सीमित था। उसका माध्यम ग्रामीण, क्षेत्रीय एवं प्रांतीय स्तर पर ब्राह्मणों, संतों, फकीरों, सूफियों, ऋषियों आदि के द्वारा कथा कीर्तन, भ्रमण, तीर्थाटन, आपसी मेलजोल, जमातों, नौटंकियों, नाटकों, मेलों त्यौहारों के द्वारा श्रृव्य एवं दृश्य साधनों के द्वारा होता था। परिव्राजक शिक्षकों पर्व संस्थाओं द्वारा ये प्रवृत्तियाँ संचालित होती थी। इनमें जमातों, देशाटन, तीर्थ–यात्राओं, मेलों, हाट–बाजारों का अधिक प्रभाव था। इन प्रवृतियों में आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक बातों का पुट था जिससे कि इन कार्यक्षेत्रों को सामान्य जन स्वीकार कर सकें।

इन कार्यक्षेत्रों का आधार सामुदायिक था और ये ग्रामीण धंधों के साथ जुड़े हुए थे। ग्रामीण स्तर पर अनौपचारिक शिक्षा के द्वारा कृषि एवं उससे सम्बन्धित सभी व्यवसायों की शिक्षा दी जाती थी। यही कारण था कि उस समय समाज शिक्षा के आयामों में चेतना तथा कार्यकारिता पर ज्यादा बल दिया जाता था। साक्षरता पर इतना ध्यान नहीं दिया जाता था।

आधुनिक युग में वैज्ञानिक विकास, आवश्यकताओं के बढ़ने और उनकी विविधता, नागरिकों के कार्य–क्षेत्र के व्यापक होने, जनसंख्या के बढ़ने और कार्य का क्षेत्र कृषि से हटाकर उद्योगों, नौकरियों आदि तक बढ़ जाने में साक्षरता

का महत्व बहुत बढ़ गया है। आज कोई भी एकाकी नहीं रह सकता और यही बात नागरिकों के लिए भी है। व्यक्ति, समाज एवं विश्व एक दूसरे पर अवलंबित हो गये हैं। विश्व में कही भी घटने वाली प्रत्येक घटना का प्रभाव प्रत्येक राष्ट्र एवं व्यक्ति पर परोक्ष या अपरोक्ष रूप से पड़ता ही है। आज व्यक्ति के जीवन–यापन का क्षेत्र भी सीमित नहीं है। जीवन स्तर के बढ़ने के साथ–साथ आवश्यकताएँ भी बढ़ गई हैं। अतः यह आवश्यक हो गया है कि नागरिक ज्यादा से ज्यादा ज्ञान प्राप्त करें और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नये–नये काम धंधों को प्रारंभ करें।

आजादी के बाद देश के केन्द्रीय, प्रांतीय सरकारों स्थापित हुई तथा क्षेत्रीय पंचायती राज संस्थाओं का प्रारंभ हुआ। संविधान की रचना हुई। नियम कानून बने। आज का नागरिक किसी गांव का नागरिक न होकर भारत का नागरिक है। वह भारतीय संविधान, केन्द्रीय एवं प्रांतीय सरकारों के कानून तथा नियमों से शासित है। सरकार द्वारा नागरिकों के लिए चलायी जा रही विभिन्न योजनाओं–परियोजनाओं क़ी जानकारी उसके लिए आवश्यक है। विभिन्न राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक कानून बने हैं – जिन्हें जानना उसके लिए आवश्यक है। नागरिक अधिकारों का उसे सही ढंग से प्रयोग करना है। अतः यह आवश्यक है कि प्रत्येक नागरिक पढ़ा–लिखा हो ताकि वह इन सब बातों को जान सके, और अपने अधिकारों एवं कर्त्तव्य का सही ढंग से निर्वाह कर सके। साथ ही अपने आर्थिक विकास के लिए नये–नये कार्य प्रारंभ कर सके। यही कारण है कि आज शिक्षा का महत्व बढ़ गया है। ग्रामीण समुदाय के अनपढ़ व्यक्तियों के लिए साक्षरता इस दृष्टि से बहुत ही आवश्यक है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश के विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाओं का प्रारंभ किया गया। इन योजनाओं में अन्य बातों के साथ–साथ प्रौढ़ समाज शिक्षा पर भी बहुत जोर दिया गया। प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत भारत सरकार प्रौढ़ शिक्षा द्वारा एवं समाज शिक्षा के लिए Intensive Rural Education Scheme के अन्तर्गत देश भर में कई जनता–कालेज कम्युनिटी सेंटर्स, समन्वित पुस्तकालय सेवा, रूरल इन्स्टीट्यूट आदि प्रारंभ किये गये। इन संस्थाओं के माध्यम से ग्रामीण नवयुवकों को विभिन्न उद्योगों का प्रशिक्षण, समाज–शिक्षा की विभिन्न सामाजिक प्रवृत्तियों का संचालन, ग्रामीण नेतृत्व कार्यकर्ताओं का प्रशिक्षण, सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन एवं विकास और साक्षरता कार्यक्रमों का प्रारंभ हुआ। परन्तु दुर्भाग्य यह रहा कि विकास के इस युग में भौतिक विकास

संबंधी कार्यक्रमों को अधिक महत्व दिया जाने लगा और प्रौढ़ एवं समाज शिक्षा के कार्यक्रम अपना महत्व स्थापित नहीं कर पाये। इसमें कार्यरत कार्यकर्ता एवं कर्मचारी वांछित सफलता प्राप्त नहीं कर सकें। सरकार ने इस कार्यक्रम की तुलना में कृषि, उद्योग तथा अन्य कार्यक्रमों पर अधिक ध्यान दिया। फलतः इन संस्थाओं का भविष्य समाप्त हो गया। ये संस्थाएं या तो धीरे–धीरे बंद कर दी गयीं या उनका स्वरूप ही बदल दिया गया और वे औपचारिक संस्थाओं के रूप में बदल गंयी। धीरे–धीरे विकास कार्यक्रमों में समाज–शिक्षा का कार्यक्रम बंद कर दिया गया। प्रौढ़–शिक्षा कार्यक्रमों को इससे बड़ा धक्का लगा। वैसे सरकार तथा स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा यह कार्य थोड़ा बहुत चलता रहा। परन्तु राष्ट्रव्यापी कोई कार्यक्रम देश में एक साथ नहीं चल सका। उसे प्राथमिकता के आधार पर राष्ट्रीय कार्यक्रम नहीं बनाया जा सका।

नागरिक समाज का निर्माता, जनतंत्र का प्रहरी तथा राष्ट्रीय विकास की महत्वपूर्ण कड़ी है। वह राष्ट्रीय भावनात्मक एकता का केन्द्र बिन्दु है। वह राष्ट्रीय एकता, अखंडता और सांस्कृतिक विरासत का प्रतीक है। उसे मानवीय मूल्यों को आधार मान कर आज के परिवेश में आदर्श नागरिक बनना है। उसे राष्ट्र की मुख्य धारा में समान रूप से सहयोगी बनना है। इसके लिए प्रौढ़–शिक्षा एवं समाज शिक्षा बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है।

1959 में देश में सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के स्थान पर जनतंत्रीय विकेन्द्रीकरण योजना के अन्तर्गत पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना हुई। इसके द्वारा गांवों में तीन स्तरीय प्रशासन व्यवस्था लागू की गई। पंचायतों, पंचायत–समितियों तथा जिला परिषदों का गठन किया गया। इन संस्थाओं में निर्वाचित व्यक्तियों द्वारा विकास सम्बन्धी सभी कार्य अपने हाथ में लिए गये। इन संस्थाओं से बड़ी अपेक्षाएँ थी परन्तु ये भी प्रौढ़–शिक्षा के लिये कुछ नहीं कर सकी।

प्रौढ़–शिक्षा कार्यक्रम के प्रति स्वतंत्रता प्राप्ति से ही राजनैतिक संकल्प, सरकारी प्रतिबद्धता तथा उपयुक्त कार्यकारी योजना का अभाव रहा है। ऐसा लगता है कि राजनीतिज्ञ और अधिकारी मन, वचन एवं कर्म से नहीं चाहते कि देश की निरक्षर जनता पूर्ण रूप से साक्षर हो। यही कारण है कि आधे मन से ये कार्यक्रम बनाये और चलाये जाते रहे हैं। शिक्षा विषय वैसे भी राजकीय विषय रहा है। राज्य सरकारों शिक्षा के विकास कार्यक्रमों को अपेक्षाकृत कम महत्व का मानती रही है। उसमें प्रौढ़–शिक्षा का स्थान तो नगण्य सा रहा है।

प्रथम बार 1977 में प्रौढ़–शिक्षा को राष्ट्रीय कार्यक्रम घोषित किया गया और राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम सारे देश में लागू किया गया। परन्तु "Trickling down concept" और "Path work theory" के कारण उसे सारे देश में कार्य के रूप में प्रारंभ नहीं किया गया। इस सिद्धान्त के अन्तर्गत कुछ चुने हुए स्थानों पर कुछ समय के लिए सरकारी सहायता से ये कार्यक्रम प्रारंभ किये गये, कुछ समय बाद ये कार्यक्रम कम होते रहे और श्रम शक्ति और समय का अपव्यय ही हुआ।

राजनैतिक दृष्टिकोण, अर्थ का अभाव, अच्छी संस्थाओं और कार्यकर्ताओं की कमी, समय पर योजनाओं की स्वीकृति का अभाव, सरकारी तंत्र की उदासीनता और कार्यक्रम की निरन्तरता नहीं बनी रहने से यह कार्यक्रम भी पहले की ही तरह असफल हो गया। सरकारों के बदलने के साथ ही इस कार्यक्रम का महत्व राजनैतिक आधार पर घटता और बढ़ता रहा है।

विश्व के छोटे–बड़े अन्य देशों की भांति प्रौढ़–शिक्षा कार्यक्रम को भारत में उचित प्राथमिकता कभी नहीं दी गई। एशिया के कई छोटे–बड़े देश जो हमारे साथ या हमारे बाद स्वतंत्र हुए उनके यहां साक्षरता का प्रतिशत हमारी तुलना में बहुत ज्यादा है। इन देशों में इस कार्यक्रम को राष्ट्रीय महत्व का मानकर निश्चित अवधि में उसे पूरा करने का प्रयास किया गया।

जनसाधारण में भी शिक्षा के प्रति जागरुकता का पूर्णरूप से अभाव रहा है। वह इस कार्यक्रम को सरकारी कार्यक्रम मानती रही है। जनता ने कभी नहीं माना कि शिक्षा उसके लिये उपयोगी है। इसे जन आंदोलन के रूप में कभी भी स्वीकार नहीं किया गया। शिक्षा कुछ ही व्यक्तियों का अधिकार है, यह सिद्धांत आज भी हम मानकर चलते हैं। यद्यपि सरकार ने शिक्षा प्रसार के बहुत प्रयत्न किये परन्तु शिक्षा के सरकारी आंकड़ों से पता चलता है कि शिक्षा प्रत्येक नागरिक के लिये अनिवार्य है–ऐसा हमने कभी नहीं स्वीकारा। यही कारण है कि 66 वर्षों बाद भी हम प्राथमिक शिक्षा का सार्वजनीकरण नहीं कर पाये और साक्षरता का प्रतिशत 36 तक ही बढ़ा सके।

निःसन्देह नई शिक्षा नीति में प्रौढ़–शिक्षा, प्राथमिक शिक्षा तथा महिला शिक्षा को उचित स्थान दिया गया है। प्रौढ़ एवं सतत् शिक्षा के लिये कई कार्यक्रमों का प्रावधान है। इसे जन आंदोलन के रूप में और क्षेत्रीय आधार पर पूर्ण साक्षरता कार्यक्रम के रूप में लागू करने की बात है। परन्तु इसकी क्रियान्विति कैसे होगी? क्या इसका भी वही भविष्य तो नहीं होगा, जो पहले हुआ है? यह

देखना है।

यदि प्रत्येक पढ़ा–लिखा नागरिक, सभी सरकारी कर्मचारी, सभी संस्थाएँ एवं सरकारी निगम और आम जनता इसके प्रति प्रतिबद्ध हो जाएं और एक साथ जुट कर कार्य करें तो कोई कारण नहीं कि हम निरक्षरता के इस अभिशाप को शीघ्र ही नहीं मिटा सकें। प्रश्न हम सभी के एक जुट होकर कार्य करने का है। इस कार्य को समाज ऋण के रूप में लेकर अपने स्तर पर उसे पूरा करने का है। साथ ही सरकार के द्वारा योजनाओं की समय पर स्वीकृति, आर्थिक सहायता प्रदान करना, स्थानीय स्वैच्छिक संस्थाओं का योगदान, समय पर पाठ्य–पुस्तकें एवं साहित्य–सृजन करना एवं उसे उपलब्ध करवाना, अन्य आवश्यक साधन सुविधाओं का प्रबंध करवाना और जनता का सहयोग इस कार्यक्रम की सफलता के लिए बहुत ही आवश्यक है। स्मूचे भारत के सभी राज्यों की समस्याएं एक समान हैं – हम सब बैठकर इन पर विचार करें और उनके निराकरण के उपाय खोजें। मुझे आशा है कि हम ऐसा कर सकेंगे और प्रौढ़–शिक्षा के कार्यक्रम को सफल बनाने में अपना यथोचित सहयोग दे सकेंगे।

***

अध्याय - 8

राष्ट्रीय साक्षरता अभियान एवं जन सहभागिता

संपूर्ण साक्षरता अभियान की वर्तमान स्थिति –

सन् 1986 की नई शिक्षा नीति राष्ट्रीय आवश्यकताओं और अपेक्षाओं के अनुरूप एक सही कदम है। इस शिक्षा नीति के आधार पर देश में शिक्षा को कुछ प्राथमिकता प्राप्त हुई। पहली बार राष्ट्र में शिक्षा के लिये राजनैतिक इच्छा शक्ति और संकल्प बना। केन्द्रीय सरकार ने संपूर्ण साक्षरता और सबके लिए शिक्षा का राष्ट्र–व्यापी कार्यक्रम देश भर में लागू करने की योजना बनाई। इसके लिये 1988 में राष्ट्रीय साक्षरता मिशन की स्थापना की गई। इस मिशन के द्वारा राष्ट्र–व्यापी साक्षरता कार्यक्रम इस समय देश के 390 जिलों में चलाया जा रहा है। आशा है कि इस सदी के अन्त तक देश के सभी जिले इसके कार्य–क्षेत्र के अन्तर्गत ले लिये जायेंगे।

सबके लिए शिक्षा प्राप्ति का लक्ष्य 20वीं सदी के अन्त तक प्राप्त करना था। वर्तमान में सभी बच्चों को प्राथमिक शिक्षा देने हेतु अनेक योजनाएं चलाई जा रही हैं। विशेषकर महिलाओं और बच्चियों की शिक्षा पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों में पिछड़े और परिगणित लोगों के लिये लोक जुम्बिश, शिक्षाकर्मी योजना, अनौपचारिक शिक्षा, सतत् शिक्षा, दूरस्थ शिक्षा योजना आदि अनेक कार्यक्रम लागू किये गये हैं।

साक्षरता की प्रगति

शिक्षा के इस सारे परिदृश्य में जो बात इस समय हमारे लिये चिन्ता का विषय है वो है – हिन्दी भाषी क्षेत्र में साक्षरता के प्रतिशत का कम होना। राष्ट्रीय साक्षरता के 52.11 प्रतिशत की तुलना में हिन्दी भाषी राज्यों में प्रतिशत बहुत कम है। राजस्थान में साक्षरता 38.55 प्रतिशत के करीब है। महिलाओं और पिछड़े वर्गों में साक्षरता का प्रतिशत बहुत कम है। यद्यपि राज्य सरकार इस समय शिक्षा के कार्य को प्राथमिकता के आधार पर आगे बढ़ा रही है। वर्तमान में राज्य के 22 जिले संपूर्ण साक्षरता कार्यक्रम के अन्तर्गत कार्यरत हैं।

राजस्थान में सावजनिक शिक्षण संस्थाएं बहुत हैं जो राष्ट्रीय आन्दोलन के समय से ही शिक्षा एवं सामाजिक उत्थान के कार्यक्रमों में लगी हुई हैं। इस समय भी वे शिक्षा के इस पुनीत कार्य में अपना पूर्ण सहयोग दे रही हैं। कई नई संस्थाएं भी प्रारंभ हुई हैं। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि हम सही रास्ते पर चल रहे हैं। परन्तु अभी बहुत कुछ करना हैं।

अभियान में बाधाएं

शिक्षा के लक्ष्य की पूर्ति में अभी भी बहुत सी बाधाएं हैं जिन्हें दूर करना होगा। उसके बिना शिक्षा और साक्षरता का यह आन्दोलन जन–आन्दोलन नहीं बन सकेगा – खाना पूर्ति तो हो जाएगी परन्तु वास्तविक सफलता प्राप्त नहीं हो सकेगी।

मेरी दृष्टि से इन बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक है :

1. अभी भी जन–साधारण शिक्षा को अपने लिये आवश्यक नहीं मानता उसके लिये इसका महत्व अभी भी नगण्य है। उसमें जागरूकता का अभाव है – जिसे बढ़ाना होगा। चेतना के साथ–साथ शिक्षा के लिये मानसिकता भी बनानी होगी।
2. राजनैतिक इच्छा शक्ति बन जाने के बाद भी अभिजात्य वर्ग जन–साधारण की शिक्षा को अपने लिये हितकर नहीं मानते। अतः ऊपरी तौर पर उसकी बात करते हुए भी मन से उसकी सफलता के लिये वांछित काम नहीं कर पा रहे हैं। उनकी मानसिकता भी बदलनी होगी।
3. 1996 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में गैर–सरकारी संस्थाओं को शिक्षा कार्यों में प्राथमिकता के आधार पर जोड़ने और उनके माध्यम से कार्य कराने की बात कही गई है। देश में सैकड़ों ऐसी संस्थाएँ हैं जिनका सहयोग अपेक्षित है। परन्तु अभी भी सरकार द्वारा इन संस्थाओं का अपेक्षित सहयोग नहीं लिया जा रहा है। कुछ इनी गिनी संस्थाओं को सुविधानुसार इस कार्यक्रम के साथ जोड़ा जाता है जो अनुचित है। बिना भेद–भाव के गैर–सरकारी संस्थाओं को इस कार्य के साथ जोड़ा जाना चाहिये।
4. जन साधारण किसी भी योजना के साथ उस समय तक पूरी तरह अपने आपको जोड़ नहीं पाता जब तक कि वह उसे सरकारी कार्यक्रम मानकर चलता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से लागू सभी पंचवर्षीय योजनाओं में, जनसाधारण से संबंधित योजनाओं में जनता की सक्रिय भागीदारी का अभाव इसीलिये रहा है कि वह एक सरकारी कार्यक्रम माना गया। जनता

समझती रही कि यह तो सरकार का कार्य है, हमें क्या लेना देना है, हमारा काम तो सिर्फ वोट देना है उसके बाद की सारी जिम्मेदारियाँ सरकार की होती हैं, अतः नागरिकों के अधिकारों और कर्तव्यों का ज्ञान उन्हें कराना आवश्यक है। इसलिये प्रत्येक कार्य में जनता की भागीदारी सुनिश्चि करनी होगी।

आज भी शिक्षा प्रसार कार्य को आम व्यक्ति अभिजात वर्ग द्वारा उनके शोषण के लिये या उन पर दया के आधार पर किया गया कार्य मानते हैं। जुलियस नरेरे का शिक्षा का दृष्टिकोण इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। जनसाधारण की आवश्यकताओं के आधार पर इसे राष्ट्रीय आयोजन का अंग मानकर चलना होगा।

समाज के प्रत्येक वर्ग के लिये अनिवार्य और महत्वपूर्ण अंग के रूप में प्रौढ़ शिक्षा – मार्च 1996 विशेषकर महिलाओं, पिछड़े और परिगणित वर्ग की शिक्षा पर अधिक ध्यान देना होगा। समाज के आधे से अधिक इस वर्ग के लोगों को शिक्षा से वंचित रखना या उन्हें अच्छी शिक्षा नहीं देना जनतंत्र और आदर्श समाज के विकास के लिये घातक है।

दार्शनिक प्लेटो के फीलोसोफर किंग्स के सिद्धान्त के स्थान पर गांधी के सर्वसाधारण की बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्त को अपनाकर कार्य करना है। शिक्षा के कार्यों में लगे सभी व्यक्तियों, संगठनों, सार्वजनिक शिक्षण संस्थाओं, विश्वविद्यालयों और सरकारी विभागों को इस कार्य के लिये सम्मिलित और समन्वय के आधार पर कार्य करने की आवश्यकता है।

शहरों, गांवों और कस्बों में समान अभ्यासक्रम, समान साधन–सुविधाआ और उचित प्रशिक्षित अध्यापकों के द्वारा समानता के आधार पर सभी को शिक्षा देनी होगी। शिक्षा कार्यों में भेदभाव से न केवल वर्ग संघर्ष बढ़ेगा वरन् देश के विकास में भी बाधाएँ उत्पन्न होगी।

देश भर में चलाये जा रहे साक्षरता अभियानों की सफलता के लिये जहाँ जन–साधारण की भागीदारी आवश्यक है, वहीं पिछले वर्षों के अनुभव और इस कार्यक्रम के क्रियान्वयन में आने वाली कठिनाईयों को ध्यान में रखते हुए उसमें सुधार की आवश्यकता है। भारत सरकार के राष्ट्रीय साक्षरता मिशन द्वारा कार्यक्रम का समय–समय पर विभिन्न एजेन्सियों द्वारा मूल्यांकन करवाया गया है। राष्ट्रीय स्तर पर निष्णात व्यक्तियों द्वारा भी इस पर विचार कर आवश्यक सुझाव मांगे गये हैं। श्री राममूर्ति द्वारा दिये गये सुझाव इस कार्यक्रम की सफलता

के लिए बहुत ही उपयोगी हैं।

अभियान की सफलता को नया रूप दिया जाना

सम्पूर्ण साक्षरता कार्यक्रम को अधिक गतिशील और सफल बनाने के लिए निम्न आधार पर नया रूप दिया गया !

1. सम्पूर्ण साक्षरता कार्यक्रम के सफल संचालन हेतु इसे विकेन्द्रित किया जा रहा है। इस नयी व्यवस्था के अन्तर्गत साक्षरता परियोजना की स्वीकृति लेकर अभियान के क्रियान्वयन तक की संपूर्ण जिम्मेदारी राज्य स्तर पर गठित "राज्य साक्षरता मिशन प्राधिकरण" को सौंपी जाएगी। राज्य साक्षरता मिशन प्राधिकरण को वित्तीय अधिकार दिये जाएंगे ताकि उन्हें बार–बार केन्द्र की अनुमति का इन्तजार नहीं करना पड़े।

   देश भर के 390 जिलों में सम्पूणर्प साक्षरता अभियान चालाया जा रहा है। इनमें 22 जिले राजस्थान के हैं। दिल्ली में बैठकर इतने व्यापक स्तर पर चलाये जा रहे कार्यक्रम पर निगरानी रखना संभव नहीं है। परियोजना की स्वीकृति, वित्तीय सहायता का समय पर स्वीकार करना, समयबद्ध मूल्यांकन, साधन–सुविधाओं का समय पर जुटाना आदि कार्य केन्द्रीय स्तर पर करने से अनावश्यक रूप में देरी होती है। अब इस कार्य को विकेन्द्रित करना आवश्यक है।

2. सम्पूर्ण साक्षरता अभियान की सफलता का मापदण्ड वर्तमान में 68 से 70 प्रतिशत तक साक्षरता लक्ष्य प्राप्त होने पर माना जाता है। व्यवहारिक दृष्टि से यह संभव नहीं है। औपचारिक शिक्षा में भी यह लक्ष्य पूरा नहीं होता है तो साक्षरता कार्यक्रम में यह कैसे संभव है? इसका परिणाम यह होता है कि झूठे आंकड़े देकर या 50 प्रतिशत लक्ष्य प्राप्त कर लेने पर भी जिले को सम्पूर्ण साक्षर घोषित कर वाह–वाही लूटी जाती रही है। अतः अब यह निश्चय किया गया है कि 55 से 60 फीसदी लक्ष्य पूरे होने को ही सम्पूर्ण साक्षर जिला माना जा सकेगा। इससे कागजी खानापूर्ति में कमी आएगी।
3. साक्षरता अभियान का पूर्ण मूल्यांकन राज्य के बाहर की संस्था करेगी इसके लिये राष्ट्रीय साक्षरता मिशन प्राधिकरण ने एक "कार्यदल" गठित किया है जिसने ऐसी संस्थाओं को सूचिबद्ध करने का कार्य पूरा कर लिया है।
4. राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के मतानुसार 35 वर्ष से ऊपर की आयु वर्ग के निरक्षरों को साक्षर करने में किया गया खर्च व्यर्थ साबित होता है। अतः 15–35 आयु वर्ग के निरक्षरों को ही इस अभियान में सम्मिलित किया जाने

का निर्णय किया गया है। जहाँ कोई अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र नहीं है वहां 9 से 14 आयुवर्ग के बालक–बालिकाओं को भी इस आयु वर्ग में सम्मिलित किया जा रहा है।

ये कुछ सुधार हैं जिससे आशा की जाती है कि साक्षरता अभियान की सफलता में सहायता मिलेगी।

जन–सहभागिता

साक्षरता अभियान की सफलता के लिये आधारभूत बात तो ग्रामीण स्तर से लेकर राज्य स्तर तक स्थानीय संगठनों, सार्वनजिक शिक्षा संस्थाओं और पंचायती राज घटकों की वास्तविक भागीदारी की है इसके लिये संयुक्त रूप से प्रयत्न कर इन संगठनों को इस कार्य के साथ जोड़ना होगा। केवल मात्र खानापूर्ति करने या कुछ मन पसंद संस्थाओं से सहयोग प्राप्त करने मात्र से सफलता प्राप्त नहीं होगी। साक्षरता अभियान को जन–आन्दोलन बनाने के लिये जन–संगठनों के साथ जोड़ना ही होगा। जब तक इसे सरकारी कार्य की भांति चलाया जाएगा कभी भी वांछित सफलता प्राप्त नहीं होगी।

भारत वर्ष में प्राचीन काल में शिक्षा कार्य भी राज्याश्रित नहीं रहा। यह कार्य हमेशा ही स्वायत्त रूप से ग्राम्य स्तर से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक विभिन्न शैक्षिणक संस्थाओं द्वारा किया जाता रहा है। इस कार्य में सरकार का हस्तक्षेप नगण्य होता था। शिक्षा कार्य ही नहीं अन्य सामाजिक कार्य भी विभिन्न संगठनों के माध्यम से होते थे। सरकार की योजनाओं को सामाजिक संगठनों द्वारा मान्यताएं प्राप्त होती रहती थी। इसी कारण वे सभी कार्य सर्व–साधारण को मान्य होते थे और उसमें उनकी सक्रिय भागीदारी रहती थी। इन कार्यों का उत्तरदायित्व ग्रामीण संगठनों, सामाजिक घटकों और पंचायतों पर था। इस प्रकार उनमें जनसमुदाय की सक्रिय भागीदारी रहती थी। वह आधार आज भी रहना चाहिये। सामाजिक संगठनों, स्वायत्त संस्थाओं और पंचायती राज संस्थाओं की भागीदारी इन कार्यों में सुनिश्चित की जानी चाहिये। शिक्षा कार्य विशेषकर साक्षरता अभियान को पंचायती राज संस्थाओं द्वारा जन साधारण के लिये अनिवार्य कार्य की तरह अपनाना होगा। यदि यह सभी कुछ किया जा सका तो निश्चित रूप से यह अभियान सफल होगा।

***

अध्याय - 9

अनौपचारिक शिक्षा और नई शिक्षा नीति

शिक्षा का उद्देश्य केवल व्यक्ति की शिक्षा से नहीं, परन्तु उसके माध्यम से संपूर्ण समाज के शिक्षण–दीक्षण एवं विकास से है। व्यक्ति से ही समाज बनता है और समाज में रह कर ही उसका विकास संभव है। अतः हम किस प्रकार का समाज चाहते हैं यह पहले स्पष्ट होना चाहिये। समाज के आधार की कल्पना स्पष्ट होने के बाद ही हम व्यक्ति को वैसा बनाने की सोच सकते हैं जो कल्पित समाज के अनुकूल अपने को ढ़ाल सके और उसका आदर्श नागरिक बन सके। पहले हमारे देश में राजतंत्र था–राजा ही राज्य का सर्वेसर्वा था। प्रशासनिक, विधायी एवं न्यायिक सभी अधिकार राजा के रूप में एक ही व्यक्ति को प्राप्त थे अतः उस समय जो शिक्षा बच्चों को दी जाती थी उसका आधार उस व्यक्ति के प्रति उसे निष्ठावान बनाना और अपना सर्वस्व उसके लिये अर्पण कर देना था। व्यक्ति पूजा ही शिक्षा का मुख्य लक्ष्य था। यही बात राजा से उतर कर नीचे परिवारों तक चली गई। राजा जब तक अपनी प्रजा को पुत्रवत् समझता रहा और उसके अनुकूल व्यवहार करता रहा तब तक वह पूजा गया और वह व्यवस्था सर्वमान्य तथा अच्छी रही। परन्तु कालांतर में वह निरंकुश बन गया और अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए अपने अधिकारों का दुरूपयोग करने लगा तो उसका विरोध हुआ। राजतंत्र के स्थान पर कुलीन तंत्र (Aristocracy) की शासन व्यवस्था एक व्यक्ति के हाथ में चली गई। राज दरबारी, जागीरदार–जमींदार, पनपते गये और समाज का सारा ढांचा धीरे–धीरे विभिन्न प्रशासनिक इकाइयों और जाति वर्ग व समूह में बटता चलता गया। इस अवधि में शिक्षा का स्वरूप भी बदला तथा वह वर्ग विशेष तक ही सीमित हो गया। शिक्षा कुछ ही लोगों, विशेषकर राज काज से संबंधित व्यक्तियों तथा उच्च वर्ग के लिये सुरक्षित कर दी गई। इससे राजकीय वर्ग के व्यक्तियों एवं प्रजा की दूरियां बढ़ती चली गई। समाज में कई प्रकार की विषमताएँ पैदा हो गई। फलतः समाज में असंतोष व्याप्त होता गया और आपसी फूट के कारण झगड़े बढ़ते ही चले गये। इससे जन–साधारण का शोषण बहुत होने लगा। इस अवस्था के

कारण न केवल भारत वरन् विश्व के कई देशों में कई राजनैतिक क्रांतियाँ हुई और समाज की शासन व्यवस्था में कई परिर्वतन हुए – भारत वर्ष में भी सामाजिक क्रांति कई रूपों में होती रही और उसके फलस्वरूप हमने भी अन्य देशों की भांति प्रजातंत्र को स्वोकार किया। इसमें एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों की शासन व्यवस्था न होकर बहुत की शासन व्यवस्था लागू हुई।

यह सब कुछ होते हुए भी भारत वर्ष में शिक्षा व्यवस्था अपने ही प्रकार की रही। आध्यात्मिक तथा मानवीय मूल्यों की प्रधानता के कारण और सांस्कृतिक एकता से सामूहिक एवं समुदाय प्रधान आधारित शिक्षा के सिद्धान्त को हमेशा प्रोत्साहन मिला। यह अनौपचारिक शिक्षा के रूप में जानी और बरती गई। इस शिक्षा पद्धति में जागरूकता (Awareness) और कार्यकारिता पर उतना ध्यान नहीं दिया गया। श्रव्य एवं दृश्य साधनों, पर्व उत्सवों, त्यौहारों, कथा–कीर्तन और तीर्थ–यात्राओं के माध्यम से यह अनौपचारिक शिक्षा प्रदान की जाती रही। ग्रामीण व्यवसायों एवं उद्योगों का ज्ञान स्थानीय निष्णात व्यक्तियों द्वारा घर पर ही दिया जाता था जो उनके धंधों से ज्यादा जुड़ा हुआ और आवश्यकतानुसार दिया जाता था। सारा समुदाय ही शाला के रूप में कार्य करता था। वह औपचारिक पाठ्यक्रम स्थान, समय, आयु–वर्ग, अध्यापक तथा निर्मित मापदंडों की सीमाओं एवं बन्धनों से मुक्त था। शिक्षा व्यवसाय एवं जीवन एक दूसरे के पूरक थे। यह शिक्षा परिब्राजक शिक्षा के रूप में दी जाती थी। उस समय वह अनौपचारिक शिक्षा का स्वरूप था।

ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना के साथ ही भारत की सभी विशेषताओं को समाप्त कर दिया गया। विशेषकर (1) शिक्षा पद्धति एवं भाषा (2) स्थानीय प्रशासन, (3) संस्कृति को। इन तीन बुनियादी सामाजिक महत्व की विशेषताओं को समाप्त करने का ब्रिटिश शासन में प्रयत्न किया गया। लार्ड मैकाले की शिक्षा पद्धति ने शिक्षा को व्यक्तिवादी ज्ञान देने वाली और नौकरियाँ देने तक सीमित कर दिया। उसका सामूहिक एवं सामुदायिक आधार धीरे–धीरे समाप्त होने लगा। चेतना एवं कार्यकारिता के स्थान पर अक्षर, ज्ञान, वह भी नौकरियों के लिये वर्ग विशेष तक ही सीमित कर दिया गया। इस प्रकार अनौपचारिक शिक्षा के स्थान पर औपचारिक शिक्षा का प्रारंभ हुआ। भाषा शिक्षण भी वर्गों में बांट दिया गया। प्रशासन की भाषा अंग्रेजी, न्यायालय की उर्दू एवं बोल चाल की भाषा स्थानीय बोलियों तक सीमित कर दी गयी। कहने का तात्पर्य यह है कि देश के लोगों को सारे देश के लिये एक ही भाषा कभी नहीं दी गई। उसका

फल हम आज तक भुगत रहे हैं। इस शासन व्यवस्था में हमारी शिक्षा, विशेषकर अनौपचारिक शिक्षा का बड़ा ही ह्रास हुआ है।

स्वतंत्रता के बाद भी शिक्षा को राष्ट्रीय स्तर पर आज तक सही दिशा नहीं मिल पा रही है। हम अभी तक अंधेरे में ही भटक रहे हैं। नई शिक्षा नीति से कुछ आशायें बंधी हैं – परन्तु उसका क्रियान्वयन कैसे होगा? मन, वचन और कर्म से कुछ किया जायेगा या नहीं, कुछ कह नहीं सकते। नई शिक्षा नीति में अनौपचारिक शिक्षा पर अधिक जोर दिया गया है लेकिन इसे केवल बच्चों तक ही सीमित कर दिया गया है।

अनौपचारिक शिक्षा का वास्तविक अर्थ उस शिक्षा से है जो हर तरह से औपचारिकताओं के बन्धन से मुक्त हो। जो समाज के प्रत्येक वर्ग एवं आयु के लोगों के लिये हो। जिसका आधार सामुदायिक हो तथा जो स्थानीय कार्यकर्ताओं के द्वारा प्रतिपादित हो। जो लाभान्वित होने वाले व्यक्ति से केन्द्रित हो तथा जो स्थानीय धंधों एवं उद्योगों को विकसित कर सके। यह शिक्षा श्रम साध्य होनी चाहिये। साथ ही नवीन ज्ञान वैज्ञानिक दृष्टिकोण से पूरित हो। भारतवर्ष में अनौपचारिक शिक्षा का महत्व कई दृष्टियों से आज भी बहुत है। यह शिक्षा विभिन्नता में एकता की सूत्रधार है। इससे स्थानीय व्यक्तियों को अपने जीविकोपार्जन के लिये स्थानीय स्तर पर ही व्यावसायिक शिक्षा दी जा सकती है जो सभी औपचारिकताओं के बन्धन से मुक्त होकर हर व्यक्ति तक पहुँच सकती है। भारत कृषि प्रधान देश होने के कारण और विकासशील समाज के लिये प्रत्येक व्यक्ति को जीवन यापन हेतु छोटे मोटे काम धंधे में लगना पड़ता है। ऐसी अवस्था में औपचारिक शिक्षा के लिए प्रत्येक व्यक्ति को समय दे पाना कठिन है। इसलिए अनौपचारिक शिक्षा उनके लिये उपयुक्त है।

अनौपचारिक शिक्षा विश्व के सभी देशों में अलग–अलग दृष्टिकोण से अलग–अलग व्यवस्था के आधार पर चलाई जा रही है। कई देशों में अनौपचारिक शिक्षा औपचारिक शिक्षा के क्षेत्र को छोड़कर अन्य प्रकार से दी जाने वाली जो किसी भी प्रकार की हो और जो किसी वर्ग या आयु के लोगों के लिये हो इस क्षेत्र में आती है। कुछ देशों में इसे Second chance education कुछ इसे Out of school education, कुछ इसे अवकाश की शिक्षा Lersure time education और कुछ इसे सामुदायिक शिक्षा Community education के रूप में चला रहे हैं।

हमारी नई शिक्षा नीति में वैसे प्राथमिक स्थान ऐसे बच्चों की शिक्षा के लिये दिया गया है जो सामान्य औपचारिक शिक्षा में नहीं आ पा रहे है और

अपने घरेलू काम धंधों में लगे रहने के कारण उससे वंचित रह जाते हैं। जिससे हमारी प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के कार्य में बाधा उत्पन्न होती है और राष्ट्र की भावी पीढ़ी का बहुत बड़ा भाग शिक्षा से वंचित रहता जा रहा है। हमार ग्रामीण समुदाय के, विशेषकर गरीब तब के के बच्चे 7–8 वर्ष की आयु में ही काम धंधे पर लग जाते हैं। इसलिये 9–14 वर्ष तक के बच्चों का बहुत बड़ा प्रतिशत है जो प्राथमिक कक्षाओं में प्रवेश पाने के बाद भी उन्हें छोड़ देता है। यही कारण है कि नई शिक्षा नीति में अनौपचारिक शिक्षा के माध्यम से इस वर्ग एवं आयु के बच्चों को शिक्षित किये जाने की योजना है।

अनौपचारिक शिक्षा का महत्व :

1. अनौपचारिक शिक्षा औपचारिक शिक्षा की पूरक होती है।
2. इस व्यवस्था में निश्चित अवधि का बन्धन नहीं है।
3. अनौपचारिक शिक्षा समय के बन्धन से मुक्त है।
4. इस व्यवस्था में शिक्षण के लिये निश्चित स्थान नहीं होता।
5. पाठ्यक्रम लचीला होता है। उसमें परिवर्तन की हमेशा गुंजाइश रहती है।
6. यह बालक केन्द्रित व्यवस्था है।
7. शिक्षण अधिगम व्यूह रचना के अन्तर्गत विभिन्न तकनीकी काम में ली जाती हैं।
8. न्यूनतम क्षमताओं के विकास पर अधिक बल होता है।
9. विद्यार्थी अपनी गति एवं मति से आगे बढ़ता है।
10. पर्यावरणीय ज्ञान तथा आर्थिक क्रिया कलापों की जानकारी दी जाती है।
11. सार्वजनिक शिक्षा के महत्व को समझाने के लिये यह व्यवस्था समुदाय को अभिप्रेरणा देती है।
12. यह व्यवस्था सामुदायिक केन्द्र के सिद्धांत को प्रतिपादित करती है।

अनौपचारिक शिक्षा का क्रियान्वयन :

1. सर्वेक्षण 2. पाठ्यक्रम, 3. प्रशिक्षण – प्रतिमास बैठक, समय–समय पर निर्देशन व निरीक्षण, 4. पर्यवेक्षण, 5. मूल्यांकन 6. समस्याएँ और 7. सुझाव (i) इस शिक्षा को वरीयता के क्रम में उचित स्थान देना, (ii) औपचारिक शिक्षा के पूरक रूप में इसे स्वीकार कर कार्य करना, (iii) अधिकारियों एवं कार्यकर्ताओं द्वारा इसे मन से आत्मसात करना, (iv) अनौपचारिक शिक्षा के कार्य में लगे कार्यकर्ताओं का उचित प्रशिक्षण, (v) केन्द्रों का चयन, कार्यकर्ताओं का चयन,

साधन सुविधाओं आदि की उचित व्यवस्था करना, (vi) स्वैच्छिक संस्थाओं को इस कार्य हेतु प्रोत्साहित करना एवं कार्य सौंपना (vii) मानदेय समान आधार पर समय पर देना, (viii) सरकारी सहायता समय पर देना और (ix) उपयुक्त अनुपूरक साहित्य एवं शिक्षण सामग्री तथा अन्य सुविधाएं उपलब्ध कराना।

अनौपचारिक शिक्षा व्यवस्था और विकास योजना :

आर्थिक एवं भौतिक विकास के साथ–साथ मानवीय विकास आवश्यक है। ये दोनों साथ–साथ समान रूप से चलने चाहिये।

व्यक्ति का शिक्षण न केवल पाठशाला में बल्कि समाज में होता है। जन्म से मृत्यु पर्यन्त शिक्षा का क्रम चलता रहता है। घर, परिवार, समुदाय व समाज से वह सीखता ही रहता है। अतः व्यक्ति व समाज का विकास एक दूसरे के पूरक हैं।

शैक्षिक विकास की अन्तर्राष्ट्रीय (आई.सी.ई.डी.) के अनुसार अनौपचारिक शिक्षा के मूल तत्व निम्न प्रकार है :

1. सहयोग सामुदायिक विकास और सतत् शिक्षा व कार्य के प्रति सकारात्मक Positive दृष्टिकोण।
2. कार्य से सम्बन्धित साक्षरता (उपयोगी साक्षरता)।
3. वैज्ञानिक दृष्टिकोण और प्रकृति के बारे में प्राथमिक जानकारी।
4. परिवार के पालने और चलाने के लिये समुचित ज्ञान व चतुराई और शिक्षा।
5. जीविकोपार्जन के लिये समुचित शिक्षा।
6. नागरिक कार्यों में भाग लेने हेतु समुचित शिक्षा।

नई शिक्षा नीति और अनौपचारिक शिक्षा :

1995 तक 14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों को शिक्षित करना और 11 वर्ष की आयु प्राप्त होने तक 5 वर्ष की स्कूली शिक्षा देना। इस समय लगभग 75 प्रतिशत out of school बच्चे आंध्र, असम, बिहार, जम्मू–कश्मीर, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बंगाल में हैं।

नई शिक्षा नीति में अनौपचारिक शिक्षा की मुख्य कार्यनीति और समुदाय की भागीदारी :

1. सभी परिवारों के बच्चों को अच्छी प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराना।
2. सभी वर्ग के बच्चों को समान एवं गुणात्मक शिक्षा उपलब्ध कराना।
3. राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा के कार्यक्रमों में विकास–प्रशिक्षण, साधन सुविधाओं

का विकास आदि।

4. राष्ट्र का भविष्य बच्चों की अच्छी शिक्षा पर निर्भर करता है, अतः बच्चे को केन्द्र मान कर शिक्षा में सुधार करना।
5. स्वास्थ्य सुधार, स्वतंत्रता एवं सम्मान प्राप्त करने के लिये शिक्षा कार्यक्रमों का निर्धारण।
6. बच्चों का स्कूल में भर्ती ही उद्देश्य नहीं है, वे अपनी शिक्षा निरन्तर बनाये रखें तथा उनमें गुणात्मकता हो।
7. स्थान विशेष एवं सामाजिक परिस्थितियों की विभिन्नता के कारण शिक्षा के कार्यक्रमों का विकेन्द्रीकरण करना, इसके लिये अध्यापकों तथा स्थानीय समुदाय की भागीदारी ज्यादा बढ़ाना।

राज्य सरकारों द्वारा अनिवार्य शिक्षा के लिये कानून बनाना चाहिए। प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के कारण अपर प्राइमरी में बच्चों की संख्या बढ़ेगी। अनौपचारिक शिक्षा से निकले बच्चों को टेस्ट लेकर औपचारिक शिक्षा के अन्तर्गत सम्मिलित करना।

इसके लिए नई शिक्षा नीति में निम्न सुझाव दिए गए हैं :

क) कामगारी बच्चों को काम देने वाले के लिये आवश्यक हो कि वे बच्चों को आराम दें तथा पोशाहार का प्रबन्ध करें और पार्ट टाइम शिक्षा की व्यवस्था करें।

ख) स्थानीय समुदाय और अभिभावकों को जिम्मेदार बनाया जाए कि वे अनौपचारिक शिक्षा के लिए आवश्यक साधन सुविधाएँ जुटायें।

ग) अनौपचारिक शिक्षा के केन्द्र बच्चों की पहुँच के अन्दर होने चाहिए।

घ) कार्यान्वयन के लिए उचित मशीनरी की स्थापना करना तथा यह मशीनरी साधन जुटाने एवं निर्देशन का कार्य करे, दण्ड देने या निरीक्षण के लिए न हो।

ड) स्थानीय ग्रामीण संस्थाओं और सरकारी संगठनों का पूर्ण सहयोग हो।

अनौपचारिक शिक्षा का नया कार्यक्रम :

अनौपचारिक शिक्षा औपचारिक शिक्षा की गुणात्मकता के साथ ही उसके पूरक के रूप में होगी। इसके लिए आधुनिक तकनीक का प्रयोग किया जायेगा जैस बिजली के लिए सोलर पेक्स का उपयोग, दृश्य–श्रव्य साधनों का उपयोग, रेड़ियों व केसेट्स प्लेयर आदि का उपयोग इन केन्द्रों में शिक्षा के वातावरण में सुधार के लिए किया जाना चाहिए। अच्छी क्वालिटी का शैक्षिक मेटीरियल इस दृश्टि को ध्यान में रखकर तैयार किया जाना चाहिए कि ये बच्चे

किसी न किसी धंधे से जुड़े हुए हैं तथा शिक्षा की अपेक्षाएँ उनके अनुकूल हो।

अनौपचारिक शिक्षा के विभिन्न मॉडेल्स का उपयोग होना चाहिए। इसका पाठ्यक्रम अलग से बना होगा तथा उसमें लचीलापन होगा –

इस शिक्षा में मुख्य विशेषताएँ निम्न होगी –

1. इसमें शिक्षा प्राप्त करने वाला केन्द्र बिन्दु होगा और अध्यापक सहयोगी की तरह कार्य करेगा।
2. अधिगम (Leming) पर ज्यादा जोर दिया जाए – पढ़ाने पर नहीं।
3. बच्चों द्वारा विभिन्न प्रवृतियों का संयोजन करवाना ताकि उनकी प्रतिभाओं का उनके माध्यम से विकास किया जा सके।
4. विभिन्न विधाओं का उपयोग–साधन सुविधाएँ विशेषकर उनकी प्रतिभाओं का उनके माध्यम से विकास किया जा सके।
5. विभिन्न विधाओं का उपयोग–साधन सुविधाएँ विशेषकर बिजली व अन्य उपकरण (equipment) उपलब्ध हों।
6. मूल्यांकन, की उचित एवं सतत् व्यवस्था का होना अनिवार्य है।
7. भाषा एवं गणित के शिक्षण के लिए उन्हीं टर्म्स को अपनाया जाना चाहिए जो औपचारिक शिक्षा के लिए आवश्यक है ताकि ये बच्चे आगे चल कर औपचारिक शिक्षा कार्यक्रम के साथ जुड़ सकें।
8. उत्पादकता कार्यक्रम के साथ शिक्षण को जोड़ना, इसमें बच्चों की भागीदारी हो।
9. मनोरंजन तथा अन्य प्रवृतियों का संचालन एवं आयोजन।
10. निःशुल्क पुस्तकों तथा स्टेशनरी के अतिरिक्त वे सभी सुविधाएं जो लड़कियों और अनुसूचित जाति एवं जन–जातियों के बच्चों को दी जाती है – अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों पर पढ़ने वाले बच्चों को भी दी जानी चाहिए।

अध्यापक प्रशिक्षण :

अध्यापक इस योजना क क्रियान्वयन का महत्वपूर्ण अंग है। अतः उसका अच्छा प्रशिक्षण आवश्यक है। इस अध्यापक के लिए निम्न अर्हतायें आवश्यक हैं : (1) स्थानीय हो, (2) मोटीवेटिड हो तथा इस कार्य में विश्वास हो, (3) स्थानीय समुदाय को स्वीकार हो, और (4) समुदाय के कमजोर वर्ग से हो तथा सामुदायिक कार्य करने का अनुभव हो।

महिलाओं को ज्यादा enrole करने हेतु महिला शिक्षिकाओं को नियुक्त

करना चाहिए। कुल मिला कर यह प्रशिक्षण 30 दिन का हो सकता है। प्रथम वर्ग में 20 दिन का तथा बाद में 10 दिन का।

पर्यवेक्षण एवं प्रशासन :

इस कार्यक्रम के लिए पर्यवेक्षण एवं निर्देशन कार्य बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसके लिए प्रशिक्षित नवयुवक 20–25 केन्द्रों पर पूरे समय का होना चाहिए।

प्रोजेक्ट :

100 केन्द्रों का एक प्रोजेक्ट होगा जो ब्लॉक डेवलपमेंट एजेंसियों के साथ–साथ चलेगा।

स्वैच्छिक संस्थाओं का सहयोग :

इस कार्य में स्वैच्छिक संस्थाओं, पंचायती संस्थाओं तथा अन्य शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत संगठनों का सहयोग प्राप्त किया जा सकता है। नई शिक्षा नीति में इन संस्थाओं द्वारा प्रौढ़ एवं अनौपचारिक शिक्षा कार्य में अधिक से अधिक सहयोग प्राप्त करने की बात कही गई है। इस कार्य के लिये क्षेत्रीय संस्थाओं को ज्यादा प्रोत्साहन दिया जाना उचित रहेगा।

सतत् शिक्षा (Continuing Education)

सभी लाभान्वित बच्चों के लिए आवश्यक है कि उनकी शिक्षा को निरन्तर बनाए रखा जाए। इसके लिए Continuing Education के कार्यक्रम आवश्यक है।

अनौपचारिक शिक्षा के बच्चों को औपचारिक शिक्षा में प्रवेश के लिए व्यवस्था।

सभी प्रकार की सुविधाएं इसके लिए प्रदान करना – स्कॉलरशिप तथा अन्य सुविधाएं देना।

औद्योगिक शिक्षा का प्रबन्ध !

सम शिक्षण विनियमों की स्थापना।

शिक्षा की दृष्टि से एडवांस क्षेत्रों में भी अनौपचारिक शिक्षा महत्व कम नहीं है। इस शिक्षा को निम्न क्षेत्रों में व्यापक रूप से चलाया जा सकता है।

(क) पहाड़ी क्षेत्र,

(ख) परिगणित एवं आदिवासी क्षेत्र,

(ग) स्लम क्षेत्र,

(घ) कामगारी बच्चों के लिए प्रोजेक्ट्स।

उक्त क्षेत्रों के लिए प्रथक् रूप से क्षेत्रीय योजनाएं बना कर यदि लागू

की जाए तो सफलता अवश्य मिलेगी और राष्ट्र के यथोचित विकास में इस शिक्षा का अपना महत्वपूर्ण स्थान बना रहेगा।

महिला शिक्षा : महिलाओं की भूमिका

महिलाओं ने आज हर क्षेत्र में उल्लेखनीय कीर्तिमान अर्जित कर अपनी यशस्वी प्रतिभा का परिचय दिया है। आज इक्कीसवीं सदी के प्रवेश द्वार पर जिस समय एक सशक्त, सम्पन्न और समृद्ध भारत राष्ट्र की छवि के निर्माण की प्रक्रिया में सारा समाज संघर्षरत है, उस समय महिलाओं का तेज देश की रचनात्मक साधना में निखर रहा है।

आशा और उत्साह के इन क्षणों में चिन्तनीय तथ्य है कि 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' का उद्घोष करने वाले समाज में महिलाएं शोषण का शिकार होती हैं। अर्द्धनारीश्वर की कल्पना करने वाले समाज में दहेज की बलिवेदी पर महिलाओं को न्यौच्छावर होना पड़ता है।

इसका एकमात्र कारण महिलाओं में व्याप्त निरक्षरता हैं जिसके कारण अशिक्षित और अनपढ़ महिलाओं में जड़ता है। सती प्रथा अन्याय और अत्याचार की परम्परा के रूप में निर्दयता और हिंसात्मक प्रवृत्ति का उदाहरण है। पति की मृत्यु पर स्त्री के जलने को श्रृद्धा का पात्र बनाना, सती के नाम से विभूषित करना, स्त्री को पति की जलती चिता में झोंक देने के द्वार खोलने का षड्यंत्र है। किसी जमाने में इसे भले ही अच्छा माना गया हो किन्तु प्रथा के रूप में मान्यता कभी नहीं दी गई। आज प्रजातंत्र के युग में सती होने को सहन नहीं किया जा सकता। किन्तु इसमें भी संदेह नहीं कि कानून बना देने मात्र से सती होना और जबरन जलाकर सती घोषित कर देना बन्द न होगा। इसके लिए जनमत जागृत करना होगा और जनमत का निर्माण साक्षरता प्रसार एवं समाज शिक्षा के माध्यम से ही किया जा सकता है।

साक्षरता प्रसार से ही दहेज प्रथा को समाप्त किया जा सकता है। दहेज प्रथा को समाप्त करने के लिए शिक्षा का इतना व्यापक प्रचार आवश्यक है कि युवक स्वयं अपनी भुजाओं पर विश्वास कर आत्मनिर्भरता का परिचय दे। स्वयं को बेचे जाने के लिए दहेज की नीलामी को रोकें। महिलाएँ शिक्षा के द्वारा साहस का परिचय दें और माता–पिता अपने पुत्र और पुत्री को समान प्रतिष्ठा दें।

बाल–विवाह को रोकने के लिए कानून बने हैं। नवीनतम कानून 18 वर्ष से कम की कन्या और 21 वर्ष से कम युवक के विवाह का निषेध करता

है क्योंकि इससे पूर्व कन्या शारीरिक और मानसिक दृष्टि से अक्षम होती है। इससे पूर्व विवाह होने से संतानोत्पति में अक्षम होने के कारण वह शीघ्र ही मृत्यु का ग्रास भी बन जाती है। यदि बच्चा हो भी जाए तो जच्चा और बच्चा दोनों कमजोर होते हैं। जन्म और मृत्यु की गणना के तथ्य इस यथार्थ का संकेत देते हैं कि मृत्यु को प्राप्त होने वाली महिलाओं में बच्चे को जन्म देते समय मरने वाली महिलाओं का प्रतिशत अधिक है। इस तथ्य के बावजूद पालने से उठाकर शिशुओं को लग्नमंडप में ले जाने का यथार्थ आज भी विद्यमान है।

बाल विवाह के दोशों को समाज शिक्षा के द्वारा हृदयंगम कराया जा सकता है और बाल विवाह के दोशों के प्रति जब समाज शिक्षा के माध्यम से महिलाओं में जागरण आएगा तभी बाल विवाह रोके जा सकेंगे।

महिला शिक्षा की ओर इस समय सरकार का ध्यान केन्द्रित है और सार्वजनिक शिक्षण संस्थाएँ एवं स्वयंसेवी संस्थाएँ भी इस ओर अग्रसर हैं। यदि महिलाए स्वयं इस और सजग और सावधान होकर आगे आये तो वे सबसे अधिक सार्थक भूमिका निभा सकती हैं।

***

अध्याय - 10

महिला शिक्षा में महिलाओं की भूमिका

परिवार में नारी का स्थान उतना ही महत्वपूर्ण होता है जितना कि घर के मुखिया का। यदि परिवार में नारी स्वस्थ, सुशिक्षित और समझदार हैं तो रहन–सहन के स्तर में अपने आप सुधार की गुंजाइश रहती है। लेकिन क्या भारत के सुदूर ग्रामीण इलाकों के बारे में ऐसा संभव हो सकता है जहाँ अशिक्षा, अज्ञान और अंधविश्वास का साम्राज्य है।

हमारे देश की जनसंख्या का अधिकांश भाग गांवों में रहता है। यह विडम्बना ही है कि आजादी के 66 वर्ष बाद भी आज गांवों में लड़कियों की शिक्षा को अनावश्यक बताकर उन्हें प्रकाश से दूर रखा जाता है। ऐसे में अज्ञानता में जीती इन महिलाओं की स्थिति दयनीय है, जिन्हें सड़कों और फुटपाथों पर शाक–सब्जी बेचते, ईंट गारा ढोते, खेतों में पसीना बहाते हुए देखा जा सकता है। इनकी संख्या 75 प्रतिशत है।

शिक्षा का अभाव अनेक समस्याओं को जन्म देता है। तरह–तरह के अन्धविश्वास, टोने–टोटके और गंडे–तावीज जहाँ एक ओर रोजमर्रा की जिन्दगी के लिये मीठा जहर हैं वहीं दूसरी ओर ऐसे संकेत मिलते हैं जिनसे ग्रामीण नारी के उबरने की कोई संभावना नहीं दिखती।

लेकिन वक्त के साथ बदलाव तो आता ही है। साक्षरता के प्रसार के साथ ही अब महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागृति आई है। महिलाओं की साक्षरता सम्पूर्ण वातावरण को प्रभावित करती है। महिला अपने बच्चे की 'शिक्षा–दीक्षा' के लिये वरदान सिद्ध होती है, किन्तु साक्षर और शिक्षित महिला अपने पति, देवर, जेठ, भाई–बहन, ननद–भौजाई सबके लिये प्रेरणादायक सिद्ध होती है। समाज में साक्षरता अभियान को सफल बनाने की दृष्टि से महिला साक्षरता का अपना ही महत्व है, अपना ही आकर्षण है।

गांवों में शिक्षा प्रसार की जो रफ्तार रही है वह संतोषजनक नहीं है। यद्यपि गांवों में रहने वाली महिलाओं को विकास की मुख्यधारा से जोड़ने के

लिये अनेक प्रयास किये जा रहे हैं परन्तु उनके सार्थक परिणाम प्राप्त नहीं हुए हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ के एक अध्ययन के अनुसार वर्ष 1890 में भारत में 13 करोड़ से भी अधिक ग्रामीण महिलाएँ दयनीय और अस्वस्थ स्थिति में जिंदगी गुजार रही हैं। इन महिलाओं में शिक्षा का प्रसार बहुत जरूरी है क्योंकि उनके जीवन में लाया गया आज का परिवर्तन आने वाली पीढ़ियों को सुधारने के लिये मील का पत्थर बन सकता है। यह तभी सम्भव होगा जब समाज इसे अपनी जिम्मेदारी समझे। यह एक नैतिक और मानवीय कर्त्तव्य है।

राजस्थान में तो महिला साक्षरता का प्रतिशत बहुत कम है। राजस्थान की महिलाएँ कर्मठता का प्रतीक हैं। जहाँ पानी सुलभ नहीं है वहाँ की महिलाएँ मीलों चलकर पानी भरती हैं और पानी के घड़ों को सिर पर रख कर फिर मीलों चलकर लौटती हैं। खेत में खलिहान में, घरों में, कारखानों में, दुकानों में, कार्यालयों में सब जगह महिलाओं को कठोर परिश्रम करते देखा जा सकता है। इसलिये यदि साक्षरता कार्यक्रमों में संलग्न कार्यकर्ता, महिलाओं को सम्मान देते हुए साक्षरता की दिशा में उन्हें प्रेरित करें तो आशातीत सफलता अर्जित की जा सकती है।

महिलाएँ सहानुभूति, करूणा, दया, क्षमा और ममता की मूर्तियाँ हैं, उनके गुणों की सराहना करते हुए सार्थक भूमिका निभाने के लिये अपने तेजस्वी व्यक्तित्व को विकसित करने की प्रेरणा दी जानी चाहिये। इसके लिये आवश्यकता इस बात की है महिलाओं को आत्मनिर्भर बनने की ओर प्रेरित किया जाये। उन्हें ऐसे औद्योगिक व्यावसायिक प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की जाये, ताकि वे अपने परिवार का खर्च चलाने में कुछ न कुछ योगदान दे सकें, और अपने परिवार की आय बढ़ाने की दृष्टि से सक्षम भूमिका निभा सके।

महिला साक्षरता के कार्यक्रमों को सफलता पूर्वक चलाने के लिये जरूरी है कि महिला साक्षरता केन्द्रों का वातावरण सांस्कृतिक अभिरूचि को विकसित करने वाला हो। राष्ट्रीय एकता की बातें की जाये। बच्चों को स्वस्थ बनाये रखने के लिये बच्चों को होने वाली सामान्य बीमारियों की जानकारी दी जाये। उनके उपचार की विधियाँ बताई जाये। बच्चों के स्वास्थ्य की दृष्टि से उन्हें समझाया जा सकता है कि परिवार के मंगलमय भविष्य के लिये परिवार को सीमित कैसे रखा जा सकता है? पर्यावरण के प्रति जितनी जागरूकता भारतीय महिलाओं में पायी जाती है। वह अन्यत्र दुर्लभ है। इसलिये पर्यावरण के प्रति उनकी जागरूक चेतना को मुखरित होने देना चाहिये।

ग्रामीण क्षेत्रों में 17–30 वर्ष की महिलाओं को शिक्षित तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण देने के लिये केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड शिक्षा के संक्षिप्त पाठ्यक्रम एवं प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाता है। देश भर में चुने हुए क्षेत्रों में यह कार्यक्रम सामजसेवी संस्थाओं के माध्यम से चलाये जा रहे हैं।

गांव–गांव में महिलाओं के संगठन बनाकर उन्हें कई उद्योगों में प्रशिक्षण दिये जाने की भी व्यवस्था है जिसमें उन्हें काम के साथ पैसे देने की भी जिम्मेदारी सरकार की है।

आज देश भर मे महिला साक्षरता का वातावरण है। यह हमारे लिये उत्साह बढ़ाने की बात है। हमें चाहिये कि हम महिलाओं को शत–प्रतिशत साक्षर करने का बीड़ा उठाये और उस पर कार्य करें। इस क्रम में हम निरन्तर बढ़ते रहेंगे तो एक दिन महिलाओं को शत–प्रतिशत साक्षर करने का लक्ष्य प्राप्त कर कार्यक्रम की सार्थकता सिद्ध कर दिखायेंगे।

देखा जाये तो किसी प्रकार के सामाजिक विकास के लिये साक्षरता एक आवश्यक अंग है। नारी शिक्षित हो सके, विवेकशील बन सके और आवश्यकता पड़ने पर आत्म निर्भर हो सके। ऐसा जब हो जायेगा तभी समाज में व्याप्त निरक्षरता के अंधकार को हम मिटा सकेंगे।

***

अध्याय - 11

श्रमिक शिक्षा : क्या और क्यों

शिक्षण एक निरंतर प्रक्रिया है और इसकी सार्थकता तभी होगी जब इसका विकास समग्र प्रसार क्षेत्रों में हो। देश में श्रमिक शिक्षा की भी उतनी ही आवश्यकता है जितनी की औपचारिक शिक्षा की। वर्तमान में औद्योगिक भारत का भविष्य यदि पूर्णरूपेण नहीं तो बहुत अंश में, श्रमिक शिक्षा की सफलता पर भी निर्भर है।

श्रमिक शिक्षा पर ऐतिहासिक दृष्टि डाली जाये तो इस दिशा में सर्वप्रथम प्रयास सन् 1877 ई. में किया गया, जब कि मुंबई में विक्टोरिया रजत जयंती प्राविधिक संस्थान की स्थापना की गई। इस संस्थान के द्वारा मिल के श्रमिकों को शिक्षण दिया जाता था।

सन् 1878 ई. में कलकत्ता में ब्रहम समाज के द्वारा वक्रिगमेंस मिशन की स्थापना की गई। इस संस्था के द्वारा कामगार एवं समाज के अन्य प्राताड़ित एवं अशिक्षित व्यक्तियों के लिए रात्रि–पाठशालाओं का संचालन प्रारंभ हुआ।

सन् 1905 में कलकत्ता की गंदी औद्योगिक बस्तियों में श्रमिकों की शिक्षा संबंधी कार्यक्रमों का संगठन किया गया पर ये सभी प्रयास अति अल्प–अवधि के प्रयास थे।

सन् 1909 में भारतीय औद्योगिक आयोग ने औद्योगिक विकास की मंदगति के कारणों का विवरण देते हुए श्रमिकों की अशिक्षा को इसका एक मूल कारण बतलाया। शाही श्रम आयोग ने इस विषय पर अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है कि भारत में लगभग सम्पूर्ण श्रम समाज अशिक्षित है। ऐसी स्थिति औद्योगिक दृष्टि से विकसित अन्य देशों में नहीं पायी जाती।

इस अयोग्यता का प्रभाव उनकी मजदूरी, स्वास्थ्य, उत्पादन, संगठन तथा अनेक अन्य क्षेत्रों में भी परिलक्षित होता है। वर्तमान मशीन उद्योग एक विशेष सीमा तक शिक्षित श्रमिकों तक निर्भर है और अशिक्षित श्रमिकों द्वारा ऐसे उद्योगों के विकास का प्रयास अति कठिन कार्य है। इसी कारण इस बात पर

जोर दिया गया कि औद्योगिक श्रमिकों की शिक्षा पर विशेश ध्यान दिया जाना चाहिये।

पाश्चात्य विद्वान हेरीलेडर के अनुसार श्रमिक शिक्षा संगठित–श्रमिकों द्वारा किया गया ऐसा प्रयास है जिसके द्वारा शैक्षिक प्रणाली के अंतर्गत सदस्य श्रमिकों के शिक्षण को व्यवस्था की जाती है। इसके तहत श्रमिकों द्वारा शिक्षण का पाठ्यक्रम निर्धारित किया जाता है, शिक्षकों का चुनाव किया जाता है बहुत अंश में आर्थिक व्यय–भार वहन किया जाता हैं।

श्रमिक शिक्षा के द्वारा सामूहिक विकास तथा समूह की समस्याओं को सुलझाने पर विशेष जोर दिया जाता है। इस प्रकार व्यावसायिक एवं वृत्तिक शिक्षण में अंतर है क्योंकि इन दोनों प्रकार की शिक्षण संस्थाओं के अन्तर्गत व्यक्तिगत विकास पर विशेष बल दिया जाता है।

श्रमिक शिक्षा के अन्तर्गत सांस्कृतिक एवं मनोरंजन संबंधी कार्यक्रमों को सम्मिलित किया जाता है, पर ये कार्यक्रम श्रमिक शिक्षा के बाह्य उद्देश्य हैं। इसका वास्तविक उद्देश्य तो श्रमिकों के कार्यस्थल, स्थानीय समुदाय तथा विश्व के संदर्भ में श्रमिकों की स्थिति को ऊँचा उठाना एवं उनकी समस्याओं का निराकरण करना है।

श्रमिक शिक्षा के उद्देश्य

जनतांत्रिक समाज के क्रिया कलापों में किसी व्यक्ति की प्रभावशाली ढंग से सहभागिता इस बात पर आधारित है कि वह व्यक्ति किस प्रकार के संगठन का सदस्य है। औद्योगिक जनतंत्र में श्रमिक संगठन का सदस्य है।

श्रमिक शिक्षा का लक्ष्य उत्पादकता में वृद्धि भी है। श्रमिक जब पूर्ण शिक्षित हो जाता है, अपनी जिम्मेदारियों को समझने लगता है और नवीनतम कलपूर्जों के संचालन हेतु अभीष्ट ज्ञान एवं कौशल की प्राप्ति कर लेता है तो उसकी उत्पादनशीलता में वृद्धि होती है।

श्रमिक शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य श्रमिकों में ऐसी योग्यता का विकास करना है कि वे मानव जीवन के उद्देश्यों को समझते हुए मानवता के वास्तविक उद्देश्यों को समझ सकें।

श्रमिक शिक्षा का अंतिम उद्देश्य सामान्य श्रमिकों के बीच में नेतृत्व के गुणों का विकास करते हुए श्रम संगठनों के बीच जनतंत्र की स्वस्थ प्रक्रियाओं एवं परम्पराओं का विकास करना है।

भारत में सन् 1958 में श्रमिक शिक्षा योजनाओं को व्यापक स्तर पर कार्यान्वयन हेतु केन्द्र सरकार ने श्रमिक शिक्षा परिषद् की स्थापना की।

परिषद् का मुलभूत कार्य देश में श्रमिक शिक्षा के कार्यक्रमों का विकास करना है। इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु इसे नीति निर्धारण से लेकर उनके कार्यान्वयन तक समस्त कार्यों को पूरा करना पड़ता है। परिषद् के द्वारा उपयुक्त मात्रा में अध्ययन सामग्री की व्यवस्था की जाती है। उसका वितरण विभिन्न प्रादेषिक केन्द्रों में किया जाता है, और श्रमिक संघों को भी अनुदान देकर शिक्षण कार्यक्रमा के संचालन हेतु प्रेरणा दी जाती है। सब कुछ मिलाकर परिषद् का कार्य श्रमिक–शिक्षा योजनाओं का देश में विकास करना है।

इसमें सन्देह नहीं कि श्रम–संघ, श्रमिक शिक्षा, श्रम विधान, औद्योगिक संबंध, उत्पादकता मजदूरी आदि विषयों पर सम्यक् ज्ञान आदि आवश्यक है और इन विषयों का पाठ्यकम में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होना चाहिये, पर साथ ही साथ आर्थिक एवं सामाजिक विषयों के आधारभूत सिद्धांतों का भी श्रमिकों को पर्याप्त ज्ञान होना चाहिये क्योंकि अधिकांश श्रमिक ग्रामीण–अंचलों से आते हैं, वे अकुशल व अशिक्षित होते हैं अतः उनके शिक्षण का पाठ्यक्रम इस प्रकार निर्मित होना चाहिये कि वे अपेक्षाकृत अधिक आसानी से विषयों का ज्ञान प्राप्त कर सके।

***

अध्याय - 12

प्राचीनकाल में राजस्थान

प्राचीन काल में राजस्थान का अपना एक विशेष महत्व था। उस समय शिवालिक पहाड़ियों से निकलकर सरस्वती नदी राजस्थान के विशाल भू–भाग को जल प्लावित करती हुई द्वारिका के पास समुद्र में जाकर गिरती थी। सरस्वती नदी के तट पर दोनों ओर बसा यह क्षेत्र सारस्वत क्षेत्र के नाम से विख्यात था। इसके पूर्व व उत्तर में मत्स्य क्षेत्र था और दक्षिण में शिवि प्रदेश था। राजस्थान के अधिकतर भू–भाग में उस समय वन ही वन थे।

वैदिक युग में आर्यों की सभ्यता का प्रमुख केन्द्र सारस्वत क्षेत्र था।[1] 'सरस्वती नदी के दोनों किनारों पर घनी बस्तियाँ थी। उन बस्तियों में खेती करने वाले लोग तो रहते ही थे, अन्य धन्धों में लगे लोग भी निवास करते थे। कृषि के अतिरिक्त अन्य व्यवसायों में लगे हुए लोग भी थे। पांच जातियों के बसे होने का उल्लेख तो मिलता ही है।[2]

सरस्वती नदी के किनारे कृषि कार्य करने वाले लोग धन–धान्य से पूर्ण थे। कृषि के सहयोगी व्यवसाय पशु पालन में भी लगे लोग थे। पशुओं से इस व्यवसाय में रचे–पबे लोगों की समृद्धि का अनुमान लगाया जाता था। उस युग में अन्नोत्पादन की दृष्टि से यह अत्यन्त समृद्ध क्षेत्र था। इसका श्रेय सरस्वती नदी को ही दिया जा सकता है।[3]

अरण्य संस्कृति का विकसित स्वरूप इस काल का अपना वैशिष्ट्य है। अरण्य संस्कृति में हर कबीले की अपनी पंचायती शासन व्यवस्था थी किन्तु ऋग्वेद में राजाओं का उल्लेख है अतः राजतंत्र भी विद्यमान था। सरस्वती नदी के उस वैभव काल में अनेक राजाओं के राज्य थे।[4]

सरस्वती नदी वैदिक भारत की समृद्ध नदी होने के साथ–साथ एक पवित्र नदी भी थी। इसके तट पर अनेक तीर्थ थे जहाँ आर्य सभ्यता और संस्कृति का चरम विकास हुआ। यहाँ यज्ञ किये गए। सरस्वती नदी के तट पर किये गए यज्ञों को कात्यायन, लाट्यायन एवं आश्वलायन आदि श्रौत सूत्रों में महत्वपूर्ण माना गया है।[5]

आश्रमों में गुरुकुल चलते थे। इन गुरुकुलों में राजा से रंक तक के बालक शिक्षा ग्रहण करते थे। गुरुकुल में पढ़ते समय सभी विद्यार्थियों से समानता का भाव था। न तो कोई उच्च वर्ग का होता था, न रंक का। गुरुकुल में विद्यार्थियों को केवल शिष्य माना जाता था। सभी विद्यार्थियों को गुरु का अनुशासन मानना होता था।

शिक्षा का समाज के साथ सामंजस्य ही उस युग की अपनी विशेषता थी। उस युग की धारणा में मुनष्य की आयु 100 वर्ष की मानी जाती थी। बाल–विवाह की प्रथा उस समय बिल्कुल न थी। 25 वर्ष तक गुरुकुल में विद्यार्थी के रूप में विद्याध्ययन किया जाता था। विद्यार्थी जीवन में भिक्षा मांगकर लाना आवश्यक था। भिक्षा मांगने से विद्यार्थी समाज की स्थिति से परिचित होता था। प्रत्येक प्रकार के व्यक्ति से उसका सम्पर्क होता था। हर प्रकार के परिवार का अवलोकन करने का अवसर मिलता था। भिक्षा का अन्न ग्रहण कर विद्यार्थी समाज के ऋण का अनुभव करता था।

26 वर्ष से 50 वर्ष तक गृहस्थ जीवन व्यतीत करने का प्रावधान था। इस काल में व्यक्ति को धन–धान्य, समृद्धि एवं सन्तान आदि से सम्पन्न होने का अवसर सुलभ होता था। पारिवारिक सुख भोगने का इस समय स्वातन्त्र्य सुलभ होता था। गृहस्थ जीवन में सम्पत्ति का अर्जन करने के लिए साथ–साथ दान आदि के द्वारा समाजोपयोगी कार्य किये जाते थे।

51 वर्ष से 75 वर्ष वानप्रस्थ आश्रम कहा जाता था। इस अवधि में पति व पत्नी गृह त्याग कर समाज के साथ साक्षात्कार करने में जीवन व्यतीत करते थे। इस समय समाज सेवा करना ही जीवन का मुख्य ध्येय रहता था। समाज का हित चिन्तन करना आवश्यक माना जाता था। समाज में शान्ति और सुव्यवस्था के लिए अपने अनुभवों के आधार पर शिक्षा देने का कार्य भी किया जाता था।

76 से मृत्युपरंत तक संन्यास आश्रम कहा जाता था। इस अवधि में पति व पत्नी अलग–अलग रहकर तपस्या का जीवन व्यतीत करते थे। परलोक के चिन्तन में लोक मंगल के कार्यों में लीन रहते थे। जीवन के अनुभवों से समाज को लाभान्वित करना आवश्यक माना जाता था। इस समय आध्यात्मिक जीवन बिताने का विधान था। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि प्राचीन काल समाज के लिए व्यक्ति के समर्पण काल था।

वैदिक युग मे वर्ण–व्यवस्था थी किन्तु जाति–भेद अथवा श्रेणी–भेद का

अभाव था जो लोग यज्ञ करते–कराते थे, पढ़ते पढ़ाते थे एवं दान देते व लेते थे, उन्हें ब्राह्मण माना जाता था। जो युद्ध कला में निपुण थे, शत्रुओं से जनता की रक्षा करते थे उन्हें क्षत्रिय कहा जाता था। जो व्यापार तथा वाणिज्य द्वारा धन अर्जित करते थे तथा समाज की आर्थिक उन्नति के लिए सहायक सिद्ध होते थे उन्हें वैश्य कहा जाता था। जो समाज में सेवा का कार्य करते थे उन्हें शूद्र वर्ण के अन्तर्गत माना जाता था।

वर्ण का आधार व्यक्ति की योग्यता अथवा अपने कार्य में निपुणता ही थी। कोई भी व्यक्ति तपस्या एवं विद्वता के कारण ब्राह्मण पद को प्राप्त कर सकता था। इसी प्रकार कोई भी मुनष्य अपनी वीरता के कारण क्षत्रिय व राजन्य बन सकता था। वैदिक ऋषियों ने समाज की कल्पना एक मानव शरीर के समान की थी जिसके शीर्ष स्थानीय ब्राह्मण थे, बाहुरूप क्षत्रिय थे, पेट व जंघाओं के समान वैश्यों की स्थिति थी और पैरों के समान शूद्र थे।

***

अध्याय - 13

राजस्थान में वैदिक कालीन प्रौढ़ शिक्षण

प्राचीन भारतीय समाज में चरित्र निर्माण, प्रतिभाशाली व्यक्तित्व, संस्कृति की रक्षा तथा सामाजिक एवं धार्मिक कर्त्तव्यों को सम्पन्न करने के लिए शिक्षा को समाज का अनिवार्य अंग माना जाता था।[6] ऋग्वेद में विद्या को मनुष्य की श्रेष्ठता का आधार माना जाता था।[7]

समाज में शिक्षा के द्वारा व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास की परिकल्पना को मूर्त रूप देने की साधना की जाती थी। सम्पूर्ण समाज में सुख–समृद्धि का विस्तार हो, ऐश्वर्य व वैभव की वृद्धि हो। लोक–मंगल की चेतना व्याप्त हो। कोई दुःखी न रहे, किसी को अभाव न सताये।

सर्वे भवन्तु सुखिनः
सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु
मा कश्चिद् दुःखभाग भवेत।।

समाज के समग्र विकास का लक्ष्य ऋषियों, मुनियों, तपस्वियों एवं मनीषियों के सामने था। ये स्वयं तो समाज के कल्याण की साधना किया ही करते थे एवं सम्पूर्ण समाज को भी इस प्रक्रिया में संलग्न करने की और प्रवृत्त रहते थे। वैदिक युग के आर्य लोग प्रकृति की विविध शक्तियों को देवता के रूप में मानकर उन्हीं की उपासना किया करते थे। प्राचीन आर्यों का विचार था – वर्षा, धूप, सरदी, गरमी सब एक नियम से होती है। इन प्राकृतिक शक्तियों के अधिष्ठाता देवता होने चाहिए और इन देवताओं की पूजा द्वारा मनुष्य अपनी सुख–समृद्धि में वृद्धि कर सकता है।[8]

आर्य इस यथार्थ से परिचित थे कि संसार का सृष्टा, पालक व संहर्ता एक ईश्वर है। उनका कथन था कि इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, सुपर्ण, गुरुत्मान, मातरिश्वा, यम आदि सब एक ही सत्ता के विविध नाम हैं। उस एक सत्ता को ही विद्वान लोग इन्द्र, मित्र आदि विविध नामों से पुकारते हैं।

प्रौढ़ शिक्षा में उसी परम सत्ता को जानने की प्रेरणा दी जाती थी। यह सृष्टि जिससे उत्पन्न हुई है, जो इसको धारण करता है, जो इसका अन्त कर प्रलय करता है, जो इस सम्पूर्ण विश्व का स्वामी व पालनकर्त्ता है, हे प्रिय मनुष्य। तू उसको जान, अन्य किसी को जानने का प्रयत्न न कर।

प्रौढ़ शिक्षा में इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया था : पृथ्वी हमारी माता है और हम सब पृथ्वी के पुत्र है। इस प्रकार राष्ट्र को माता मानने की प्रेरणा दी गई और राष्ट्र–प्रेम के बीज बोये गए। सम्पूर्ण समाज को एक सूत्र में पिरोने के लिए सामाजिक एकता का भाव प्रतिष्ठित किया गया।

राजस्थान के विशाल भू–खण्ड में उस समय सरस्वती नदी का प्रवाह था, उस काल को वेद–मंत्रों से गुंजित कर ऋषियों ने वातावरण पवित्र बनाने का प्रयास किया था। विद्याध्ययन समाप्त करने पर विद्यार्थियों को ऋषि–ऋण चुकाने के लिए प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी। ऋषि ऋण चुकाने के लिए उन्हे एकोऽहं बहु स्याम् के मंत्र की दीक्षा दी जाती थी।

एकोऽहं बहु स्याम्

इस मंत्र का अर्थ है – एक मैं हूँ बहुत हो जाऊँ ! इसका तात्पर्य है जिस प्रकार शिक्षा से ओत–प्रोत मैं हूँ। समाज में वैसे ही बहुत से व्यक्तियों का निर्माण मैं करूँ। मेरा ज्ञान समाज के अनेक व्यक्तियों में समा जाए। वास्तव में इस प्रकार ज्ञान के प्रकाश से सम्पूर्ण समाज को आलोकित करने का लक्ष्य था।

विद्यार्थी को बोध कराया जाता था। विद्यार्थी जीवन में समाज के अन्न से तुम्हारा पोषण हुआ है। उस समाज के अन्न का मोल चुकाने का समय आया है। गुरु के द्वारा प्राप्त शिक्षा प्रचार–प्रसार कर गुरु के ऋण को चुकाओ। ऋषि ऋण से मुक्त हो जाओ।

विद्यार्थियों के सामने लक्ष्य था –

पश्येन शरदः शतम्
शृणुयाम शरदः शतम्
जीवेम शरदः शतम्
अदीनाःस्याम् शरदः शतम्।।

सौ वर्ष तक जीवित रहने का लक्ष्य संयम के साथ जीवन बिताने की प्रेरणा देता था। समाज में शिक्षा की ज्योति जागृत करने के लिए भी विद्यार्थी को उच्चादर्श स्थापित करने का चैतन्य अपनाना होता था। समाज में अपने ज्ञान का उपयोग कर विद्यार्थी समाज के व्यक्तियों से सम्पर्क साधता था।

व्यक्तिशः सम्पर्क कर उन्हें सायंकाल के समय किसी एक सार्वजनिक स्थल पर एकत्रित होने की प्रेरणा देता था।

उस समय प्रौढ़ शिक्षा का कार्य एक सामाजिक कार्य था, जिसमें समाज के सभी लोग सम्मिलित होते थे। विद्यार्थियों की सक्रियता का अपना विशेष महत्व था। गृहस्थ भी यथा संभव सहयोग करते थे। जहाँ तक वानप्रस्थ आश्रम का प्रश्न है, इस आश्रम के स्त्री–पुरुष तो समाज–सेवा में ही जीवन व्यतीत करते थे। इसलिए वे अपने जीवन के अनुभवों से समाज को लाभान्वित करते थे। संन्यास आश्रम के लोग आध्यात्मिक प्रवचन देकर लोक परलोक सुधारने के लिए समाज को प्रवृत्त करते थे। सम्पूर्ण समाज का सहयोग होने के कारण यह कार्य अत्यन्त सुचारू रूप से चलता था।

प्रौढ़ शिक्षा के विस्तृत और व्यापक कार्यक्रम के आलोक में वैदिक काल में शिक्षा को प्रकाश का स्रोत माना जाता था, जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में सच्चा मार्ग प्रदर्शन करती है। ज्ञान मुनष्य का तीसरा नेत्र है, जो उसे समस्त तत्वों के मूल को समझने में समर्थ बनाता है और उसे सही कार्य में प्रवृत्त करता है।[9]

विद्या को मनुष्य की श्रेष्ठता का आधार माना जाता था। इसके द्वारा मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होता था। चारों आश्रमों के लोग प्रौढ़ शिक्षा के कार्य में सम्मिलित होते थे किन्तु जो मनोयोग पूर्वक शास्त्रों के अध्ययन में प्रवृत्त होता था, उसके लिए मोक्ष का द्वार सुलभ होता था। यह धारणा उस काल में सर्वमान्य थी कि वेदशास्त्र आदि के तत्वों का ज्ञाता किसी भी आश्रम में क्यों न हो, वह इस लोक में रहते हुए ही मुक्ति प्राप्त कर लेता है।[10] जनता में यह दृढ़ विश्वास था कि वेदाध्यन से सभी पापों से छुटकारा मिलता है, यह वातावरण प्रौढ़ शिक्षा से ही बना था।

प्रौढ़ शिक्षा के कार्य में प्रवृत्त लोगों के प्रयासों से जो किसी समाज, किसी सार्वजनिक स्थल पर व्यक्ति एकत्रित होते थे, उनमें ज्ञान की चर्चा होती थी। वेदों के मंत्रों की व्याख्या की जाती थी। गृहस्थजन मनोरंजन संबंधी कार्यक्रमों में रूचि लेते थे, स्वयं भी प्रस्तुत करते थे। वानप्रस्थी अपने अनुभवों से समाज को लाभान्वित करते थे। कथा–कहानियों के माध्यम से शिक्षा के द्वारा मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करते थे।

समाज में शिक्षा का प्रचार–प्रसार करने का एकमात्र लक्ष्य था– समाज में सभी लोग सुखी हो, समृद्ध रहे, सम्पन्न हो, स्वस्थ्य रहे, सब में परस्पर स्नेह रहे। सब का कल्याण हो। न कोई दुःखी रहे, न कोई अभावग्रस्त रहे।

समाज के समग्र विकास का लक्ष्य था, शिक्षा का प्रचार–प्रसार करने वाले लोग स्वयं तो समाज कल्याण के कार्य में साधनारत रहते ही थे, सम्पूर्ण समाज को भी इस प्रक्रिया में संलग्न रहने के लिए प्रेरित करते थे।

वैदिक युग में प्रौढ़ शिक्षा का लक्ष्य सम्पूर्ण समाज को सुखी बनाना था। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए विद्यार्थी, ग्रहस्थ, वानप्रस्थी और संन्यासी सभी लोग शिक्षा के प्रचार–प्रसार द्वारा ऋषि–ऋण चुकाने की साधना किया करते थे। एक सामूहिक अभियान चलाया जाता था जिसमें जन–जन का महत्वपूर्ण योगदान होता था। इस अभियान में उत्साह से भाग लेने से जीवन की सार्थकता मानी जाती थी। सारा समाज इसमें रूचि लेता था।

स्त्रियों को पुरुषों के समान शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था। उनका समाज में आदर था, उनकी प्रतिष्ठा थी। अनेक स्त्रियाँ इतनी विदुषी थी कि उनके बनाये हुए मंत्रों को वैदिक संहिताओं में संकलित किया गया है। लोपा मुद्रा, अपालोमयी आदि अनेक स्त्रियाँ सूक्तों की ऋणि हैं। गोधा, घोशा, विश्ववारा, आदति, सरमा आदि कितनी ही ब्रह्म वादिनी महिलाओं का उल्लेख प्राचीन साहित्य में आया है। ब्रह्मचर्यपूर्वक विद्याध्ययन कर जो स्त्रियाँ गृहस्थाश्रम में प्रवेश करती थी, उन्हें पारिवारिक जीवन में सहधर्मिणी माना जाता था।

वर्ण–भेद की स्थिति उस समय नहीं थी। वर्ण–भेद का मुख्य आधार जन्म न होकर कर्म था। सारा समाज एक है, यह भावना विद्यमान थी। शिक्षा का महत्व समाज में सभी स्वीकार करते थे।

***

अध्याय - 14

उत्तर वैदिक युग का राजस्थान

वैदिक युग के आर्य राज्यों का स्वरूप जन राज्य का था क्योंकि उनका आधार जन होता था। एक जन के सब व्यक्ति प्रायः सजात होते थे। कुरु, पांचाल, शिवि, मद्र, केकय, गान्धार आदि जो राज्य वैदिक युग में विद्यमान थे, वे सब जन राज्य थे। जिस स्थान या प्रदेश पर यह जन बसा होता था, उसे जनपद व राष्ट्र कहते थे।

धीरे–धीरे इन जनपदों में अन्य लोभी बसने शुरू हुए और वे सब उसके अंग या प्रजा बन गए। इन जनपदों में किसी कबीले या जन के प्रति भक्ति की अपेक्षा उस प्रदेश के प्रति भक्ति अधिक महत्व की बात हो गई। विविध जनपदों के परस्पर संघर्षों के कारण महाजनपदों का विकास हुआ। काशी, कौशल, मगध, शिवि, मत्स्य, सारस्वत, केकय, पांचाल आदि उस काल के जनपद थे। शिवि, मत्स्य और सारस्वत क्षेत्र उस समय के जनपद राजस्थान में थे। वैदिक युग में आर्य धर्म का जो स्वरूप था उसमें तत्व चिन्तन की लहर ने क्रान्तिकारी परिवर्तन किया था। वेदों के देवता प्राकृतिक शक्तियों के मूर्तरूप थे। संसार की मूल शक्ति जिन विविध रूपों में अभिव्यक्त होती है, उनमें वैदिक आर्यों ने अनेक देवताओं की कल्पना की थी। इन देवताओं की पूजा और तृप्ति के लिए वे यज्ञों का अनुष्ठान करते थे।

उत्तर वैदिक काल में आर्यों का ध्यान ब्रह्म विद्या तथा तत्व चिन्तन की ओर भी गया। यज्ञों से इहलोक और परलोक दोनों में सुख प्राप्त होता है, यह मानते हुए भी वे इस प्रकार के विषयों के चिन्तन में तत्पर थे कि मनुष्य क्या है? जिसे हम आत्मा कहते हैं, इसका क्या स्वरूप है? शरीर और आत्मा भिन्न हैं या एक ही है? मरने के बाद मनुष्य कहाँ जाता है? इस सृष्टि का कर्त्ता कौन है? इसका नियमन किस शक्ति द्वारा होता है?

इस युग के ग्रामों और नगरों के बाहर जंगल के प्रदेशों में अनेक विचारकों ने अपने आश्रम बनाये थे जहाँ ब्रह्म विद्या या तत्वज्ञान की प्राप्ति के लिये आतुर हुए लोग एकत्र होते थे तथा स्वाध्याय द्वारा ज्ञान की अपनी प्यास बुझाते थे।

आरण्यक आश्रमों में चिन्तन करने वाले ये विद्वान अनुभव करते थे कि मानव–जीवन की उन्नति और परम् पद की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य अपनी इन्द्रियों को वश में करे, दृढ़ संकल्प होकर आत्मा और ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करे और ईश्वर में ध्यान लगाए। शरीर से भिन्न जो आत्मा है, उसको जानने और उस पर ध्यान देने से ही मनुष्य उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हो सकता है।

वर्णाश्रम व्यवस्था की स्थिति में परिवर्तन आया था। याज्ञिक अनुष्ठान ष सैनिक वृत्ति आदि की विशिष्टता के कारण ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों को अन्य लोगों की अपेक्षा श्रेष्ठ माना जाता था किन्तु धर्माचरण द्वारा निकृष्ट वर्ण का व्यक्ति अपने से उत्तम वर्ण प्राप्त कर सकता था और अधर्म का आचरण करने से उत्कृष्ट वर्ण का व्यक्ति अपने से निचले वर्ण में चला जाता था।

यदि कोई शूद्र विशिष्ट रूप से धार्मिक, विद्वान् व दक्ष हो तो समाज में उसका आदर होता था। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार एक बार ऋषि लोग सरस्वती नदी के तट पर यज्ञ कर रहे थे, उस समय ऐलूश कवश नाम का व्यक्ति उनके बीच में आ बैठा। तब ऋषियों ने कहा, यह दासी का पुत्र अब्राह्मण है। हमारे बीच में कैसे बैठ सकता है किन्तु उसकी विद्वता ने ऋषियों की ऑखें खोल दी। उन्हें ज्ञात हुआ कि यह तो परम् विद्वान है, देवता लोग भी इसका आदर करे, इस योग्य यह व्यक्ति है। उसे उपयुक्त सम्मान दिया गया।

राजस्थान में उत्तर वैदिक कालीन प्रौढ़ शिक्षा

वैदिक युग में समाज शिक्षा की चेतना का लक्ष्य इस यथार्थ में अन्तर्निहित था कि सम्पूर्ण समाज किस प्रकार सुखी हो, समृद्ध हो? किस प्रकार सम्पूर्ण समाज के धन, ऐश्वर्य और वैभव में वृद्धि हो, विकास हो? किस प्रकार समाज में ऐसे वातावरण का निर्माण हो कि न तो कोई व्यक्ति दुःखी हो, न अभावों से पीड़ित हो। इन प्रश्नों के हल करने की साधना में रत समाज सेवी अपनी तपस्या के अनवरत क्रम में लीन थे।

उत्तर वैदिक काल में प्रौढ़ शिक्षा की यह धारा बदली। अब धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जीवन के चार पुरुषार्थ निर्धारित किये गए। समाज शिक्षा में धर्म का महत्व इसलिए प्रतिष्ठित किया गया कि मानव जीवन आचरण में पवित्रता को अपनाने तथा चरित्र–निर्माण की प्रक्रिया में लगे। समाज शिक्षा में अर्थ को महत्वपूर्ण इसलिए माना गया ताकि जन सामान्य समृद्धि की और बंढ़े, सुख की और बढ़े और प्रगति करें और करता जाए। काम के पुरुषार्थ को महत्व देकर सांसारिक सुख, सम्पदा और विभूति को अर्जित करने की प्ररेणा दी गई। मोक्ष

का तात्पर्य था सांसारिक सुखों से विरक्ति। इसमें ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और संन्यासी सभी लगते थे ताकि ज्ञान का आलोक समाज में व्याप्त अज्ञान को पूर्ण रूपेण समाप्त करे।

उस समय की प्रौढ़ शिक्षा का मन्तव्य लोक मंगल के चैतन्य से ओत–प्रोत था। इस कार्य को ईश्वरीय कार्य माना जाता था। अतः इसके पूर्ण होने में संदेह नहीं किया जाता था। ईश्वरीय कार्य है तो पूर्ण होगा ही, अतः इसके करने का अभिमान नहीं होना चाहिए प्रेरणा यह दी जाती थी कि इस कार्य में स्वयं को निमित्त मात्र माना जाय।

वैदिक युग से उत्तर वैदिक काल में आते–आते जनसंख्या का विस्तार हुआ था और इसके साथ ही समाज में विकार भी बढ़े थे। इसलिए असद् से सद् की और चलने की प्रेरणा दी गई। बुराइयाँ त्याग कर अच्छाइयाँ ग्रहण करने के लिए प्रेरित किया गया। समाज में व्याप्त अज्ञान के अन्धकार को समाप्त कर ज्ञान के आलोक में विचरण करने की और प्रवृत्त करने के लिए कहा गया। अन्धकार से प्रकाश की ओर चलो। दूसरों की भलाई के लिये स्वयं को समर्पित करने की प्रेरणा इसलिए दी गई ताकि मरणशील मानव अमरत्व की साधाना में लीन हो सके।

उत्तर वैदिक काल अर्थात् उपनिषद् काल के तत्व चिन्तन ने बहुदेववाद की धारणा को निर्मूल सिद्ध कर दिया। समाज को यह बताया गया संसार की उत्पत्ति एक सता द्वारा की गई, उसका पालन भी वही सत्ता करती है, संहार में भी कारण वही सत्ता है। सम्पूर्ण सृष्टि का नियन्ता और नियामक वही सत्ता अर्थात् परम् ब्रह्म है। इस प्रकार समाज की एकता का शाश्वत पाठ पढ़ाया गया।

राजस्थान में आज से लगभग सात हजार वर्ष पूर्व जल प्लावन के कारण प्रलय सा दृश्य उपस्थित हो गया। जब समय–समय पर कूल कगारों को तोड़ती हुई दूर–दूर तक भयंकर दृश्य उपस्थित करने वाली सरस्वती नदी में शामिल होकर समुद्र उमड़ आया। अब तक नदी समुद्र में गिरती थी, इस बार समुद्र नदी के साथ राजस्थान के विशाल भू–भाग पर छा गया। राजस्थान के अधिकांश भू–भाग में विशेषतः जहाँ–जहाँ सरस्वती नदी बहती थी उसके आस–पास चारों और पानी ही पानी दिखाई देने लगा। गाँव के गाँव डूब गए। शहरों का अस्तित्व समाप्त हो गया।

समुद्री तूफान को संस्कृत में वृत्र कहा जाता है। शतपथ ब्राह्मण में इसका वर्णन मिलता है, वृत्र ने पृथ्वी और आकाश के बीच सारे अवकाश को घेर रखा था।[11]

अध्याय - 15

समुद्री तूफान

समुद्री तूफान के काल का निर्धारण कर पाना आसान नहीं हैं, किन्तु इस काल का अनुमान लगाना आवश्यक इसलिए है क्योंकि इस दुर्घटना ने राजस्थान की तत्कालीन गतिविधियों पर वज्रपात किया था। शिक्षा की किसी गतिविधि का तो प्रश्न ही नहीं उठता। समुद्री तूफान के आने के लिए जो कारण उत्तरदायी माने गये हैं, उनका अध्ययन प्रौढ़ शिक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

पर्यावरण को शुद्ध बनाये रखने के लिए सजगता आज भी प्रौढ़ शिक्षा की प्राथमिकताओं में से एक है। अरण्य संस्कृति के विकास के क्रम में निरन्तर आगे बढ़ते जाने वाले आर्यों में प्रगति का उन्माद जब अपने चरम शिखर पर जा पहुँचा तो पर्यावरण के सन्तुलन का ध्यान रखा न जा सका। इसकी आवश्यकता अनुभव की गई। वनों की अन्धाधुन्ध कटाई की गई। साथ ही उनके जलाने का क्रम बढ़ता गया। अनियोजित एवं अविचारित भूमि अधिग्रहण अभियान के कारण जलवायु का सन्तुलन बिगड़ गया।

इसका प्रभाव सारस्वत क्षेत्र पर पड़ना स्वाभाविक था। वहां अतिवृष्टि और अनावृष्टि के रूप में आर्यो को प्राकृतिक प्रकोप का सामना करना पड़ा। प्राकृतिक प्रकोप बढ़ते ही गए। फलतः सरस्वती और उसकी सहायक नदियों के पर्वतीय जल ग्रहण क्षेत्रों में भू–स्खलन की घटनाएँ बढ़ी और मैदानी क्षेत्र में भू–क्षरण सर्व बढ़ता गया। फलतः समुद्री तूफान का संकट राजस्थान के विशाल भू–भाग को झेलना पड़ा।

इस समुद्री तूफान के संबंध में दकन कॉलेज पूना के सयुक्त निदेशक डॉ. वीरेन्द्र नाथ मिश्र का अनुमान है कि यह तूफान लगभग 3000 वर्ष ईस्वी पूर्व आया होगा।[12] श्री मिश्र भारतवर्ष के प्रतिष्ठित पुरातत्व विद एवं सुप्रसिद्ध इतिहासकार हैं।

डॉ. एच. डी. सांकलिया के अनुसार राजपूताना में कुछ वर्षों तक डेवलपमेंट कमिश्नर के पद पर काम करने वाले डॉ. गाडवेल ने अपनी शोध यात्रा के दौरान राजपूताना के कुओं की वोरिंग में से कुछ नमूनों के आधार पर यह

सिद्ध किया कि जो नमक राजपूताना के कुओं में पाया जाता है वह समुद्री नमक है। इससे यह सिद्ध होता है कि 'साहित्य संस्थान राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर' द्वारा आयोजित ओझा आसन के अन्तर्गत भाषण माला में 23.10.81 को दिया गया डॉ. वी.एन. मिश्र का भाषण तथ्य परक था।

हड़प्पा संस्कृति के उद्‌भव से पूर्व राजस्थान एक समुद्र था।[13]

वृत्र का अर्थ समुद्री तूफान ही है। शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि पृथ्वी और आकाश के बीच समस्त अवकाश को घेरने के कारण इसका नाम वृत्र है। उसमें बताया गया कि इन्द्र ने वृत्र का वध किया। वध के बाद दुर्गन्ध देता हुआ वह सभी दिशाओं में प्रवाहित हुआ क्योंकि समुद्र चारों ओर है।[14]

इन्द्र को काँपती हुई धरती को स्थिर करने वाला, क्षुब्ध पर्वतों को शान्त करने वाला, आकाश को स्थिर एवं अन्तरिक्ष का माप करने वाला बताया गया है।[15] वृत्र का वध करके समस्त नदियों के प्रवाह को व्यवस्थित करने का कार्य जब इन्द्र ने सम्पन्न किया तो वृत्र के दुर्गन्ध देकर बहने से तात्पर्य यही निकाला जा सकता है कि पानी इतने समय तक ठहरा रहा कि वह सड़ने लगा था।

समुद्री तूफान के कारण समुद्र कितने समय तक राजस्थान के विशाल भू–भाग पर बहता रहा। इसको ज्ञात करने के साधन सुलभ नहीं हैं किन्तु कालीबंगा हड़प्पा सभ्यता का सर्वोत्तम केन्द्र माना जाता है। वहीं की खुदाई में जो नगर, सड़कें, नालियाँ, मकान, निकास स्थान आदि मिले हैं उनका नियोजन वर्तमान नगरों के नियोजन के अनुकूल एवं बहुत व्यवस्थित है। इसका समय आज से 5000 वर्ष पूर्व का माना जाता है।

कालीबंगा में ही और अधिक खुदाई करने पर दो टीलों से प्राग् हड़प्पा संस्कृति के अवशेष मिले हैं। पाग् हड़प्पा स्तर की दीवारों को सैंधवों ने किलेबन्दी के लिए ऊँचा उठाकर उनमें उत्तर और दक्षिण भाग में बहिर्गत दीवारें, बुर्ज व प्रवेश द्वार बनाये।.....प्रत्येक मकान में अग्नि कुण्ड बने हुए थे। विभिन्न स्तरों के मकानों का उल्लेखनीय लक्षण यह है कि उनके अग्नि–कुण्ड अंडाकार हैं अथवा आयताकार हैं।

कालीबंगा उत्खनन की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि इसने सैन्धव लिपि पहचान कराने के प्रयास में एक ठोस दिशा निर्देश दिया है। यहाँ से प्राप्त एक सैन्धव लिपि युक्त मृद् पात्र लिपि की ओवर लैपिंग ने यह सिद्ध कर दिया है कि यह लिपि दाहिनी ओर से बायीं ओर लिखी जाती थी।[16]

प्राग् हड़प्पा कालीन संस्कृति के अवशेष समुद्री तूफान से पूर्व सरस्वती नदी के तट पर सारस्वत क्षेत्र की विकसित संस्कृति का संकेत देते हैं। कार्बन की वैज्ञानिक पद्धति द्वारा प्राग् हड़प्पा संस्कृति के काल को आज से 7000 वर्ष पूर्व निर्धारित किया गया है। जबकि हड़प्पा कालीन संस्कृति के अवशेष समुद्री तूफान के बाद विकसित होने वाली संस्कृति का यथार्थ सिद्ध करते हैं। इस प्रकार समुद्री तूफान के कारण शिक्षा की दृष्टि से 2000 वर्ष का समय अन्धकार का युग रहा था।

महाभारत का काल भी विद्वानों के मतानुसार पाँच हजार वर्ष पूर्व ही निर्धारित किया गया है। महाभारत में गदायुद्ध के प्रसंग के साथ यह उल्लेख है– बलदेव विनशन की ओर बढ़े जहाँ सरस्वती नदी विलुप्त होती है।[17]

महाभारत के अनुसार विनशन वह स्थान है, जहाँ विशाल जल सम्पदा वाली नदी सरस्वती विलुप्त होती है। यह निषेध राज्य का प्रवेश द्वार है। निषादों की घृणा के कारण यहाँ सरस्वती नदी पृथ्वी में समा गई ताकि कोई निषाद् उसे देख न सके।[18] महाभारत काल के इस वर्णन से यही सिद्ध होता है कि उस समय सरस्वती नदी न तो विशाल जल सम्पदा वाली नदी थी, न इसके प्रवाह में प्रखर वेग था और न यह समुद्र तक जाती ही थी।

***

अध्याय - 16

महाकाव्य काल में राजस्थान की प्रौढ़ शिक्षा

प्राचीन मुनियों और विचारकों द्वारा भारत में तत्व–चिन्तन की जो लहर चली थी, उसके कारण यज्ञप्रधान वैदिक धर्म में बहुत परिवर्तन हो गया। उपनिषदों के तत्व–चिन्तन के परिणामस्वरूप जिस भागवत धर्म का प्रादुर्भाव हुआ, इसमें याज्ञिक अनुष्ठानों का विरोध नहीं किया गया। यज्ञों की उपयोगिता को स्वीकार करते हुए उसमें एक सर्वोपरि शक्ति की सत्ता, आत्मा की अमरता, कर्मयोग की उत्कृष्टता और भागवद् भक्ति की महिमा का प्रतिपादन किया गया।

इस काल में जन चेतना का विकास हुआ था। राजस्थान में यद्यपि राजतंत्र का शासन था किन्तु इस काल में राजा को एक प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी, एक शपथ लेनी होती थी जिसमें वह कहता था कि यदि मैं प्रजा के साथ किसी भी तरह से द्रोह करूँ, उस पर अत्याचार करूँ तो मेरे वे सभी शुभ कर्म नष्ट हो जाएँ, जो मैं जन्म से मृत्यु पर्यन्त करता हूँ। राजा के लिए यह आवश्यक था कि वह अभिषेक के समय की हुई प्रतिज्ञा का उल्लघंन न करें।

आश्रम व्यवस्था के अनुरूप मनुष्य के लिए ब्रह्मचर्य आश्रम में रहकर ज्ञान का उपार्जन करना आवश्यक था और बाद में वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करने वाले व्यक्ति के लिए अपने अनुभवों के आधार पर समाज को ज्ञान प्रदान करना आवश्यक था। संन्यास आश्रम में प्रवेश करने वाला मनुष्य मनुष्यों का उपकार करने में ही अपना सारा समय व्यतीत करता था। हर मनुष्य संन्यासी नहीं हो सकता था जो व्यक्ति विशेष रूप से ज्ञानवान् हो, सब प्राणियों में आत्म्स–भावना रखने की सामर्थ्य जिसमें हो, वही संन्यासी बन कर भिक्षावृत्ति द्वारा जीवन–निर्वाह करने का अधिकारी था। सन्यासी किसी एक स्थान पर स्थिर होकर निवास नहीं कर सकता था। संन्यासी का कर्त्तव्य था कि वह सर्वत्र भ्रमण करता हुआ लोगों का उपकार करे।

ग्रहस्थाश्रम को बहुत ऊँची दृष्टि से देखा जाता था। वशिष्ठ सूत्र में लिखा है कि जिस प्रकार सब बड़ी और छोटी नदियाँ समुद्र में जाकर विश्राम पाती हैं, उसी प्रकार सब आश्रमों के मनुष्य गृहस्थ पर ही आश्रित रहते हैं। जैसे

बच्चे अपनी माता की रक्षा में ही रहते हैं, वैसे ही सब भिक्षुक और संन्यासी गृहस्थों की ही रक्षा में रहते हैं। ऋषि–मुनि और याज्ञिक अपने तत्व–चिन्तन के लिए गृहस्थ धर्म से विमुख होने की आवश्यकता इस युग में नहीं समझते थे।

रामायण और महाभारत के अध्ययन से पता चलता है कि महाकाव्य काल में बहुविवाह की प्रथा प्रचलित थी। राजा दशरथ ने कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा तीन स्त्रियों से विवाह किया था। द्रोपदी ने युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, सहदेव और नकुल पाँच पाण्डवों से विवाह किया था।

कौरवों ने राजसभा में खुले तौर पर चीरहरण कर जो अपमान किया, उससे सिद्ध होता है कि महाकाव्य काल में स्त्रियों की वह उच्च स्थिति नहीं रह गई थी जो कि वैदिक काल में थी।

महाभारत काल में बाल–विवाह की प्रथा का प्रारंभ हो गया था। अभिमन्यु का विवाह सोलह वर्ष की आयु में हुआ था। भीष्म पितामह ने व्यवस्था की थी तीस वर्ष की आयु का पुरुष दस वर्ष की कन्या से विवाह कर सकता है और इक्कीस वर्ष की आयु का पुरुष सात वर्ष की बालिका से विवाह कर सकता है।[19]

इस काल में नियोग की प्रथा भी प्रचलित थी। नियोग के विषय में कहा गया है कि पति के मर जाने पर स्त्री देवर के साथ नियोग करके सन्तानोत्पति कर सकती है।[20] पति के जीवित होने पर भी पति की अनुमति से स्त्री नियोग कर सकती थी, पाण्डवों की माता कुन्ती ने युधिष्ठर, भीम व अर्जुन नियोग द्वारा ही उत्पन्न किये थे।

महाभारत काल में परदे की प्रथा का भी सूत्रपात हो चुका था। स्त्री पर्व में लिखा है : जिन स्त्रियों को पहले देवता भी देख नहीं सकते थे, वे आज सब लोगों के सम्मुख रोती हुई दीख पड़ रही है। इसी प्रकार दुर्योधन की स्त्रियों को असूर्यम्पश्या कहा गया है जिन्हें सूर्य तक न देख सके।[21]

इस काल में धन का महत्व बढ़ गया था। द्रोणाचार्य व कृपाचार्य कहते है : धन मनुष्य का दास नहीं हैं, अपितु मनुष्य धन का दास है। कौरवों ने धन द्वारा हमें बाँध लिया है।[22]

***

अध्याय - 17

बौद्ध काल में प्रौढ़ शिक्षण

बुद्ध सच्चे अर्थों में सुधारक थे। प्राचीन आर्य धर्म में जो बहुत–सी विकृतिया आ गई थी, उन्हें दूर कर उन्होंने सच्चे आर्य धर्म का पुनरुद्धार करने का प्रयत्न किया। अपने मन्तव्यों और सिद्धान्तों के बारे में उन्होंने बार–बार कहा – एव धम्मा सनातनो। यही सनातन धर्म है।

बुद्ध के अनुसार चार आर्य सत्य हैं – 1) दुःख, 2) दुःख का हेतु, 3) दुःख निरोध और 4) दुःख को दूर करने का मार्ग। दुःख की व्याख्या करते हुए बुद्ध ने कहा – जन्म भी दुःख है, बुढ़ापा भी दुःख है। मरण–शोक रुदन और मन की खिन्नता भी दुःख है। दुःख के रूप को स्पष्ट कर बुद्ध ने कहा – दुःख का हेतु तृष्णा है। तृष्णा का त्याग करने से दुःख का निरोध हो जाता है। दुःख के निरोध का उपाय आष्टांगिक आर्य–मार्ग बताया गया है। बौद्ध धर्म के आठ अंग थे – (1) सम्यक् दृष्टि (2) सम्यक् संकल्प (3) सम्यक् वचन (4) सम्यक् कर्म (5) सम्यक् आजीविका (6) सम्यक् प्रयत्न (7) सम्यक् विचार और (8) सम्यक् समाधि।

बुद्ध के उपदेशों का प्रचार जनभाषा में किया गया। पहले बुद्ध के उनके शिष्य समाज में अपने सिद्धान्तों का प्रचार करते थे जो प्रौढ़ शिक्षा का ही एक प्रकार था, स्वरूप था। जब बौद्ध धर्म का प्रचार–प्रसार बढ़ा तो प्रौढ़ शिक्षा का यह स्वरूप बौद्ध विहारों मे सीमित हो गया। बौद्ध भिक्षुओं द्वारा विहारों में उपदेश दिये जाने लगे।

राजस्थान में यद्यपि बौद्ध धर्म का प्रचार बहुत कम हो सका था किन्तु जहाँ–जहाँ प्रचार हुआ वहाँ शिक्षा के स्वरूप पर बौद्ध धर्म का प्रभाव था। मौर्य सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म का व्यापक प्रचार–प्रसार किया। इसके लिए बौद्ध धर्म की शिक्षाओं को शिलाओं पर अंकित कराया गया जो शिलालेखों के रूप में यत्र–तत्र सर्वत्र मिल जाते हैं।

अशोक ने अपने साम्राज्य में धर्म विजय की नीति को अपनाया था। अशोक ने राज्य में धर्म महामात्र नियुक्त किये थे। इन धर्म महामात्रों को यह

काम सौंपा गया था कि वे सब सम्प्रदायों में मेल कराएँ, जनता के हित और सुख के लिए यत्न करें और धर्मानुकूल आचरण करने वाली प्रजा को सब बाधाआ से बचाये रखें। शासन में किसी पर कठोरता न हो, कोई व्यर्थ कैद न किया जाए और किसी की व्यर्थ हत्या न हो। जो गरीब लोग हैं या जिन पर गृहस्थी आदि की जिम्मेदारियाँ हैं, ऐसे लोगों के साथ विशेष रियायत का बर्ताव हो।

धर्म महामात्रों का कार्य था सड़के बनवाना, सड़कों पर वृक्ष लगवाना, कुएँ खुदवाना, सराय बनवाना, प्याऊ बिठाना, पशुओं और मनुष्यों की चिकित्सा के लिए चिकित्सालय खुलवाना, जनता का हित और कल्याण सम्पादित करना। जहाँ ये धर्म महामात्र इन उपायों से लोगों का हित और सुख करते, वहाँ साथ ही अशोक का धर्म सन्देश भी सुनाते थे।

शिला लेखों में धर्म के सर्वसम्मत सिद्धान्त को ही अंकित किया जाता था। ये धर्म महामात्र यह भी देखते थे कि शिल्प लेखों में निर्दिष्ट आचरण को किस सीमा तक अपना रही है। एक शिलालेख में धर्म के संबंध में लिखा है – धर्म वह है कि दासों और सेवकों के प्रति उचित व्यवहार किया जाय, माता–पिता की सेवा की जाय। मित्रों, परिचितों, रिश्तेदारों, श्रमणों तथा ब्राह्मणों को दान दिया जाय और प्राणियों की हिंसा न की जाय।

एक अन्य लेख में कहा गया है – माता और पिता की सेवा करनी चाहिए। प्राणियों के प्राणों का आदर दृढ़ता के साथ करना चाहिए (अर्थात् जीव हिंसा नहीं करनी चाहिए)। सत्य बोलना चाहिए। सबको अपने जाति–भाईयों के प्रति उचित बर्ताव करना चाहिए। यही प्राचीन रीति है। इसमें आयु बढ़ती है और इसी के अनुसार मनुष्यों को चलना चाहिए।

एक अन्य लेख में लिखा है – धर्म करना अच्छा है। पर धर्म क्या है? धर्म यही है कि पाप से दूर रहे, बहुत से अच्छे काम करें, दया, दान, सत्य और पवित्रता का पालन करें।

अशोक स्वयं बौद्ध धर्म का अनुयायी था, पर उसने जिस धर्म विजय के लिए उद्योग किया, वह किसी सम्प्रदाय विशेष की विजय न होकर सब धर्मों के सर्वसम्मत सिद्धान्तों का प्रचार ही था। राजस्थान में यत्र–तत्र–सर्वत्र अशोक के शिलालेख मिले हैं। इससे पता चलता है कि बौद्ध धर्म के प्रभाव से प्रौढ़ शिक्षा का यह स्वरूप एक समय तक प्रचलित रहा है। जिसमें समाज के जन जीवन का आचरण पवित्र बनाने का प्रयास किया गया था। मानव मंगल की साधना

की गई थी। राजस्थान में बौद्ध धर्म के अतिरिक्त जैन धर्म का भी प्रभाव था। जैन धर्म के प्रभाव में भी प्रौढ़ शिक्षा का एक स्वरूप प्रचलित था। उसमें भी आचरण संबंधी उपदेश उनके उपासकों में दिये जाते थे।

***

अध्याय - 18

जैन धर्म और प्रौढ़ शिक्षण

जैन धर्म के अनुसार मानव जीवन का उद्देश्य मोक्ष प्राप्त करना है। मोक्ष प्राप्ति के लिए मनुष्य क्या प्रयत्न करे, इसके लिए बताया गया है कि गृहस्थ के लिए पांच अणुव्रतों का पालन करना आवश्यक है – (1) अहिंसाणुव्रत – जैन धर्म के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि वह अहिंसा व्रत का पालन करे। मन, वचन और शरीर से किसी भी प्रकार की हिंसा करना अनुचित है। (2) सत्याणुव्रत – मनुष्यों में असत्य·भाषण करने की प्रवृत्ति अनेक कारणों से होती है। द्वेश, स्नेह तथा मोह का उद्वेग इसमें प्रधान कारण है। इन सब प्रवृत्तियों को दबाकर सर्वदा सत्य बोलना सत्याणुव्रत कहलाता है। (3) अचौर्याणुव्रत – किसी भी प्रकार से दूसरों की सम्पत्ति चोरी न करना और गिरी हुई, पड़ी हुई अथवा रखी हुई वस्तु को स्वयं ग्रहण न करे, उसके स्वामी को दे देना अचौर्याणुव्रत कहलाता है। (4) ब्रह्मचर्याणुव्रत – मन, वचन तथा कर्म द्वारा पर–पुरुष का समागम न कर अपने पति से ही सन्तोष रखना स्त्री के लिए तथा पुरुष के लिए मन–वचन–कर्म द्वारा पर स्त्री गमन न कर अपनी पत्नी से ही सन्तोष रखना ब्रह्मचर्याणुव्रत कहलाता है। (5) परिग्रह–परिमाण अणुव्रत – आवश्यकता के बिना बहुत से धन–धान्य को संग्रह न करना परिग्रह–परिमाण–अणुव्रत कहलाता है। गृहस्थों के लिए यह आवश्यक है कि वे धन संग्रह करें, पर उसी में लिप्त हो जाना और अर्थ–संग्रह के पीछे भागना पाप है।

इन अणुव्रतों का पालन गृहस्थों को हमेशा करना ही चाहिए। इन अणुव्रतों का उपेदश जैन उपासकों में मुनियों के द्वारा दिया जाता था। इसके लिए विभिन्न प्रकार के दृष्टान्त दिये जाते थे। साथ ही अनेक प्रकार की कहानियों को भी कहा जाता था, जिससे इस प्रकार दी जाने वाली प्रौढ़ शिक्षा में रोचकता आ जाती थी। सामान्य सांसारिक जीवन व्यतीत करते हुए गृहस्थों को अधिकतर कठोर व्रतों का पालन करने की दीक्षा लेने की भी प्ररेणा दी जाती थी। इन कठोर व्रतों को गुणव्रत कहा जाता है। (1) दिग्विरति – गृहस्थ को चाहिए कि कभी कभी यह व्रत ले कि मैं इस दिशा में इससे अधिक दूर नहीं

जाऊँगा। (2) अनर्थ दण्ड विरति – मनुष्य को ऐसे कार्यों से बचना चाहिए जिनसे उसका कोई संबंध नहीं होता। (3) उपभोग परिभोग परिमाण – गृहस्थ को यह व्रत ले लेना चाहिए कि मैं परिमाण में इतना भोजन करूँगा, भोजन में इतने से अधिक वस्तुएँ नहीं खाऊँगा और इससे अधिक भोग नहीं करूँगा।

***

अध्याय - 19

स्मृति काल की प्रौढ़ शिक्षा

इसे पुराण काल भी कहा जाता है और स्मृति काल भी। पुराण काल इसे इसलिए कहा जाता है क्योंकि इस काल में अधिकतर पुराणों का निर्माण किया गया। स्मृति काल इसलिये कहा जाता है क्योंकि समाज में प्रचलित नियमों, परम्पराओं, प्रणालियों और पद्धतियों का आलेखन किया गया। समाज में जिनके द्वारा व्यवस्था दी जाती थी, दण्ड विधान निर्धारित होता था, इनका आलेखन जो ऋषि करता था उसी के नाम से वह स्मृति प्रसिद्ध हुई यथा मनु स्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, नारद स्मृति आदि। स्मृतियों के इस काल में जो प्रौढ़ शिक्षा का स्वरूप प्रचलित था उसे चरण शिक्षा का नाम दिया गया।

एक गुरुकुल में शिक्षा पाने वाले शिष्यगण उसी सम्प्रदाय का विशेष रूप से प्रचार करते थे। उनका गुरुकुल जिस सम्प्रदाय से संबद्ध होता था। अपने सम्प्रदाय को जन–जीवन में प्रतिष्ठित करने के लिए ये लोग गाँव–गाँव घूमते थे और अपने सम्प्रदाय के अनुरूप विचारों का प्रचार करते थे।

इस चरण विद्या में जो लोग किसी पुराण विशेष के प्रति श्रद्धा रखते थे वे लोग अपने प्रिय पुराण में प्रतिपादित धार्मिक सिद्धातों का प्रचार करते थे। जनता शास्त्रों से उद्धृत दृष्टातों तथा कहानियों को बड़े मनोयोग से सुनती थी और उनें अंतर्निहित शिक्षा के अनुरूप विचारों का प्रचार करते थे।

इस काल में प्रौढ़ शिक्षा के विविध आयाम विकसित हो चुके थे जिनमें कहानी पद्धति का शुभारम्भ और विकास विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कहानी पद्धति से प्रौढ़ शिक्षा देने का श्रेष्ठतम उदाहरण पंच तंत्र है। पंच तंत्र की कहानियाँ इतनी अधिक रोचक थी कि इनका प्रचलन अपने देश में तो हुआ ही, इनका प्रचार विदेशों तक जा पहुंचा। इसी कारण इन कहानियों का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद किया गया।

प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में पंच तंत्र की कहानियों ने एक नये युग का सूत्रपात किया। इनके माध्यम से जीवन के हर क्षेत्र का ज्ञान कराना संभव हो सका। कहानियों की रोचकता ने जनजीवन को विशेष रूप से आकर्षित किया। फलतः

प्रौढ़ शिक्षा के स्वरूप का विस्तार हुआ और जन–साधारण ने इसमें विशेष रूचि ली। अत्यन्त सुरुचि के साथ भाग लेने के साथ–साथ जन सामान्य इस दिशा में सक्रिय भी हुआ और संलग्न भी।

प्रौढ़ शिक्षा का स्वरूप प्राचीन काल से पूर्णतया अनौपचारिक रहा। राजस्थान में प्रौढ़ शिक्षा का निरन्तर विस्तार होता रहा, इसमें ग्राम संस्थाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा। ग्राम संस्थाओं का स्वरूप उस समय छोटे–छोटे राज्यों के समान था। ग्राम संस्थाएँ अपने–आप में पूर्ण थी। उन्हें जो कुछ भी चाहिए था, उनके अन्दर मौजूद था। इसमें लोकतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था थी। राजवंश आते और जाते रहे किन्तु ग्राम संस्थाओं का स्वरूप यथावत् बना रहा। शिक्षा पर खर्च करना ग्राम संस्थाओं का महत्वपूर्ण काम था। ग्राम संस्थाओं के स्वरूप को यथावत् बनाये रखने में प्रौढ़ शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान था। प्रौढ़ शिक्षा के निरन्तर विकास होते रहने के कारण राजस्थान के ग्राम समृद्ध बने रहे। साथ ही सम्पूर्ण देश के आकर्षण केन्द्र भी बने रहे। प्राचीन काल में राजस्थान की प्रौढ़ शिक्षा अत्यन्त उन्नत अवस्था में थी।

***

अध्याय - 20

राजपूत काल

प्रौढ़ शिक्षा की दृष्टि से राजपूत काल ने राजस्थान में एक नये युग का सूत्रपात किया। इस समय छोटे–छोटे अनेक राज्य बने जिसमें राजवंशों का शासन आरम्भ हुआ। ये छोटे–छोटे राज्य किसी न किसी बात पर लड़ते रहते थे। सुरक्षा की दृष्टि से लड़ने भिड़ने का प्रशिक्षण प्राप्त करना लगभग हर व्यक्ति के लिए आवश्यक हो गया था। फलतः प्रौढ़ शिक्षा की चेतना का विकास क्रम पहले जैसा नहीं रहा।

शास्त्रों की झनकार सुनाई देने लगी जो निरन्तर बढ़ती ही गई। लड़ने–भिड़ने की प्रवृत्ति बदली गई जिसका परिणाम यह हुआ कि समाज में मरने का आंतक कम होता गया। नैतिकता के मानदण्ड बदलते गए। युद्ध में लड़ते–लड़ते मर जाने को वीर गति माना जाने लगा जिसे आदर की दृष्टि से देखा जाने लगा।

वीरता, शौर्य और पराक्रम की पूजा होने लगी। सुरक्षा की दृष्टि से गढ़ और किले बनाये जाने लगे। किलेदार, जागीरदार, सरदार और समन्तगण राज्य के स्तम्भ बने। ये सब लड़ने–भिड़ने की कला के विशेषज्ञ थे। एक नया वातावरण बना जिसमें शिक्षा का चैतन्य क्रमशः कम होता गया।

इस अशान्ति काल में नैतिकता के नये मानदण्ड निर्धारित किये गए। हर समय युद्ध की संभावना के कारण उद्योग, व्यापार और व्यवसाय पर अपेक्षित ध्यान नहीं दिया गया। फलतः कृषि की उन्नति के लिए उतने प्रयास नहीं किये गए जितने किये जाने चाहिये। पशुधन की समृद्धि के लिए भी यथेष्ट प्रयास नहीं किये गये जितने किये जाने चाहिये। इस कारण समाज इस काल में उन्नति की ओर अग्रसर न हो सका।

राजपूत काल के बाद मुस्लिम आक्रमण ने समाज को अस्त–व्यस्त किया। विदेशी आक्रमण का प्रतिरोध राजपूत शासकों ने एक लम्बे समय तक किया। देश में अन्य भागों में मुस्लिम शासन स्थापित हो जाने के बाद भी शताब्दियों तक राजस्थान में स्वतंत्रता का संघर्ष चलता रहा।

संघर्ष काल में प्रौढ़ शिक्षा के विकास की कल्पना नहीं की जा सकती। इसे मध्य काल कहा जाता है। राजस्थान इस समूचे काल में विभिन्न संस्कृतियों का संगम स्थल रहा। मुस्लिम संस्कृति का प्रचार–प्रसार करने के लिए मुस्लिम फकीर, औलिया और सूफी सन्त गांव–गांव जाकर जो उल्लेखनीय कार्य कर रहे थे उसे प्रौढ़ शिक्षा का ही एक प्रकार कहा जा सकता है। दूसरी और, साधु–सन्त और विद्वज्ज्न गांव–गांव घूम कर रामायण, महाभारत, भागवत तथा शासकों के उल्लेखनीय अंशों से जन–साधारण को परिचित कराने के माध्यम से प्रौढ़ शिक्षा की मशाल जलाये हुए थे। इसके अतिरिक्त प्रौढ़ शिक्षा का कार्य आगे बढ़ाने में राजस्थान के लोक तीर्थों की भी उल्लेखनीय भूमिका रही है।

मुल्ला, मौलवी, फकीर, सूफी संत, औलिया जब कभी किसी गांव में पहुँचते, उससे पहले उनकी ख्याति वहाँ पहुंचती। उससे जन सम्पर्क करने सुविधा उन्हें मिल जाती। जो इतने प्रसिद्ध नहीं होते, वे इस स्थान पर झाड़–फूँक करते, इसके द्वारा लोगों के रोगों का नाश करते तथा अपनी सिद्धियों क चमत्कार से लोगों को प्रभावित करते। इसके अतिरिक्त सामान्य रोगों की जड़ी–बूटियों अथवा वनस्पतियों द्वारा औषधि का निदान बताते। इस प्रकार सम्पर्क कर एक वातावरण बनाते, तदनन्तर सायंकाल एक सार्वजनिक स्थल पर लोगों को एकत्रित करते और अपनी बात कहते। इस प्रकार अपने मत का प्रचार करते थे।

पोथा–पत्रा लेकर गांव में पहुंचने वाला व्यक्ति गांव के लोगों से सम्पर्क करने का एक दूसरा रास्ता अपनाता था। यह पत्रा देखकर किसी को तिथि बतलाता, किसी को पूर्णिमा, अमावस अथवा एकादशी के बारे में बतलाता। किसी का हाथ देखकर उसके भाग्य और भविष्य की बात करता, किसी की जन्म–पत्रिका देखकर उसके सुख–दुःख की चर्चा करता। किसी को विवाह, गृह प्रवेश, मुण्डन आदि का मुहूर्त बताता। एक अच्छा जन सम्पर्क हो जाने पर सायंकाल सबको एकत्रित करता और रामायण, महाभारत या भागवत आदि की कथाएँ बाँचकर सुनाता था। उस समय प्रौढ़ शिक्षा का एक स्वरूप यह भी था।

राजस्थान में कट्टर पन्थी शासकों द्वारा जब मन्दिर ढहाये गये, मूर्तियाँ तोड़ी गई, हिन्दुओं को बलपूर्वक ईस्लाम ग्रहण करने पर बाध्य किया गया तो हिन्दुआ का विश्वास डोलने लगा। उस समय युग की आवश्यकता के अनुरूप साधकों ने भजन, नृत्य, गायन ध्यान आदि द्वारा ईश्वर प्राप्ति का मार्ग दिखाकर यह स्पष्ट कर दिया कि ईश्वरीय भक्ति, मन्दिरों अथवा मूर्तियों में नहीं अपितु अपनी साधना में सँजोकर प्राप्त की जा सकती है। इससे जनता में धर्म

से डगमगाया विश्वास पुनर्गठित होने लगा। इस महान् कार्य को करने वाले अपने साधु–सन्त हैं जिनमें से कुछ का उल्लेख उपयोगी हो सकता है, जिन्होंने अपने मत का प्रचार जिस प्रकार किया उसे प्रौढ़ शिक्षा का ही एक स्वरूप कहा जा सकता है।

विश्नोई सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक जाम्या जी पंवार राजपूत थे। इनका जन्म 1451 ई. में नागोर के पीपासर गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम लोहर जी तथा माता का नाम हंसादेवी था। माता–पिता के इकलौते पुत्र होने के कारण यह उनके बहुत लाड़ले थे। बचपन से ही जम्भो जी एकान्तप्रिय थे।

गाय चराना इन्हें विशेष प्रिय था। जंगल के शान्त वातावरण में गाय चराते हुए चिन्तन में लीन रहा करते थे। कहा जाता है कि 16 वर्ष की आयु में ही इन्हें सद्गुरु का साक्षात्कार मिला। इसके बाद गुरु से दीक्षा ले कर यह सत्संग करने लगे और हरिवार्ता में समय व्यतीत करने लगे।

जम्भो जी ने अनुभव किया ईश्वर एक है, उसके नाम अनेक हैं, वह सर्वव्यापी है। आत्मा अमर है। कर्म के अनुरूप फल मिलता है। मानव शरीर पूर्व जन्म के पुण्य से प्राप्त होता है। आवागमन से छुटकारा पाने की स्थिति ही मोक्ष है। यह गुरु की कृपा से ही संभव है। आवागमन से मुक्ति पाने के लिए विष्णु जाप करना एक मार्ग है।

उन्होंने वैदिक, जैन, बौद्ध और ईस्लाम आदि धर्मों का अध्ययन किया और हर धर्म से अच्छी बात ग्रहण की। धर्म के नाम पर प्रचलित आडम्बरों, ढोंग ओर पाखंडों का उन्होंने जोरदार खण्डन किया। उनका प्रमुख ग्रंथ "जम्बवाणी" या "सबद वाणी" नाम से जाना जाता है।

उनकी शिक्षाओं को मानने वालों को विश्नोई कहा जाता है। उनकी शिक्षाएँ है – मासिक धर्म की दशा में पांच दिन तक स्त्री से दूर रहे, हमेशा नहाएँ, सन्तुष्ट रहें, पानी शुद्ध पिएं, आरती करें, आग में घी डाल कर होम करें, चोरी न करें, झूठ न बोलें, हिंसा न करें, सोच–समझकर बोलें, क्रोध एवं निन्दा न करें, हरा वृक्ष न काटे, अमावस्या का व्रत करें, भेड़, बकरी व बैल को बधिया न करें। उन्होंने नशीले पदार्थों का भी विरोध किया। अमल, शराब, तम्बाकू, भंग न खाए न पीए। नील लगे कपड़े को छूने के लिए मनाही की। संसार से अधिक मोह न करें। सभी प्राणियों पर दया भाव रखे। वाद–विवाद से बचें। मूर्ति–पूजा न करें।

निरंजनी सम्प्रदाय

यह सम्प्रदाय तो प्राचीन काल से चला आ रहा था किन्तु इसे प्रतिष्ठित करने के कारण हरिदास जी को इस सम्प्रदाय का प्रवर्त्तक माना जाता है। इनका जन्म 1452 ई. में डीडिवाना के कापड़ोद गांव में हुआ था। यह साँरवला गोत्र के क्षत्रिय थे। 44 वर्ष की अवस्था में दीक्षा लेकर यह भ्रमण करने लगे। इनके उपदेशों से प्रभावित होकर शिष्यत्व ग्रहण करने वालों की संख्या बढ़ती गई। इनका शिष्य परिवार निरंजनी सम्प्रदाय के नाम से जाना गया।

यह सम्प्रदाय ज्ञान, भक्ति और वैराग्य का मिश्रण है। हरिदास जी ने कबीर की साधना पद्धति को अपनाया। अलख निरंजन, हरि निरंजन, राम निरंजन का प्रयोग इस सम्प्रदाय में किया जाता है। इस सम्प्रदाय के विरक्तों को निहंग कहा जाता है। निहंग खाकी रंग की गूदड़ी गले में डालते हैं, पात्र रखते हैं और भिक्षा द्वारा निर्वाह करते हैं। डीडवाना के पास गाढ़ा गांव में फाल्गुन सुदी 1 से 12 तक मेला लगता है जिसमें इस सम्प्रदाय के लोग एकत्रित होते हैं।

जसनाथी सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक सिद्ध जसनाथ का जन्म कार्तिक सुदी 11 वि. सं. 1539 में बीकानेर के कातरियासार में हुआ। सद्गुरू से अश्विन शुक्ल 7 वि.सं. 1551 को दीक्षा ग्रहण की और साधना करने लगे। सिद्धि प्राप्त होने पर सिद्ध जसनाथ के नाम से प्रसिद्ध हुए। इनका सम्प्रदाय जसनाथी सम्प्रदाय कहलाता है।

इस सम्प्रदाय के प्रत्येक अनुदायी को अनिवार्यतः 36 नियमों का पालन करना होता हैं – उत्तम कार्य करते हुए चलना, स्वधर्म के पालन का मार्ग अपनाना, हिंसा नहीं करना सफाई के साथ केशों को धारण करना, स्नान करके भोजन करना, मांस न खाना, सदैव ध्यान पूर्वक शील–शौच संतोष का पालन करना, दोनों काल सन्ध्या करते हुए ईश्वर का ध्यान करना, हवन करना, दूध–पानी को कपड़े से छानकर पीना, मोक्ष–प्राप्ति के रास्ते खोजना, कन्या विक्रय न करना, ब्याज पर ब्याज न लेना, धन के अनुपात में बीसवां हिसा धर्म कार्य में खर्च करना, मन एवं वचन से किसी की निन्दा न करना, धूम्रपान का त्याग करना, जंगल के भोले जीवों की रक्षा करना, पशु कसाई को न बेचना, अतिथि सत्कार करना, चोरी आदि बुरे कर्मो का मन–वचन–कर्म से त्याग करना, जन्म मरण से 10 दिन तक सूतक मानना, मदिरा पान नहीं करना, भांग–गांजा–चरस आदि नहीं पीना, पक्षियों को चुग्गा देना तथा गुरू मंत्र से दीक्षित होना।

मीराँ दासी सम्प्रदाय

मीराँ को राजस्थान की मन्दाकिनी कहा जाता है। मीरा का जन्म मेड़तिया राठौड़ वंश के राव दूदा जी के चौथे पुत्र रत्नसिंह के घर 1499 ई. में हुआ था। मीरा अपने माता–पिता की इकलौती पुत्री थी। मीराँ की अल्पायु में ही माँ का साया उठ गया, अतएव वह अपने दादा के पास ही रहने लगी। मेड़ता के पास कुड़की गांव में जन्म लेने वाली मीराँ ने भक्ति के एक नवीन मार्ग की स्थापना करके धार्मिक सम्प्रदाय के लिए एक चुनौती स्थापित की, साथ ही राजपूती एवं राजवंशीय परम्पराओं की सीमाओं को तोड़कर एक नये कीर्तिमान की स्थापना भी की।

19 वर्ष की आयु में मीराँ का विवाह महाराणा साँगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज के साथ हो गया। मीरा अपने लौकिक पति का सुख अधिक नहीं देख सकी। 1523 ई. में भोजराज की मृत्यु हो गई। लौकिक सुहाग से वंचित मीरा को एक के बाद एक अनेक दुःख झेलने पड़े। मीराँ के पिता रतनसिंह 1527 ई. में खानवा के युद्ध में काम आए। श्वसुर महाराणा साँगा का 1528 ई. में देहान्त हो गया। चित्तौड़ में गृह कलह ने भयानक रूप धारण कर लिया। मीराँ दुःखों पर दुःख आने पर भी अपने मार्ग पर अटल रही। वह अपने गिरधर गोपाल में लीन रही। इस कारण उन्हें अनेक प्रकार की प्रताड़णाएँ झेलनी पड़ी। विष का प्याला और नाग की पिटा तक भेजी गई। तरह–तरह के व्यंग्य बाण भी उन्हें झेलने पड़े किन्तु नटवर नागर के प्रति उनका प्रेम और प्रगाढ़ होता गया।

मीराँ की भक्ति भावना के अधिक निकट होने के कारण ही सर्वग्राह्य और लोकप्रिय हो सकी। उन्होंने भावनामूलक सरल, सहज एवं सरस मार्ग अपनाया है। इसी कारण राजस्थानियों पर उनके भजनों का इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि न केवल जनता जनार्दन ने इन भजनों को अपनाया अपितु यहाँ प्रचलित कई संप्रदायों के संतों ने अपनी पोथियों में अपने गुरु की वाणियों के साथ मीराँ के पदों को स्थान दिया है।

दास्य भाव से भगवान की उपासना करने वालों का सम्प्रदाय ही वास्तव में मीराँ दासी सम्प्रदाय है। मीराँ की भक्ति प्रेम भक्ति थी। उनके आराध्य गिरधर गोपाल थे। श्लोक में इसको देखा जा सकता है –

नरसी के प्रभु सांवलिया हो, सूरदास के श्याम।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, तुलसी के दास के राम।।

लालदासी सम्प्रदाय

लालदास इस सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक थे। इनका जन्म 1540 ई. में अलवर के धौलीधूप गाँव के मेव परिवार में हुआ था। यह बहुत पढ़े लिखे नहीं थे। धन्धे से वह लकड़हारे थे। सत्संग के प्रभाव से इन्होंने काफी कुछ सीख लिया था। सीखी हुई बातों का जन सामान्य में इन्होंने प्रचार किया। नगला नामक गांव में इनकी समाधि है जो इस सम्प्रदाय वालों के लिए तीर्थ है। इस सम्प्रदाय पर कबीर एवं दादू सम्प्रदाय का काफी प्रभाव है।

दादू पंथ

संत दादू दयाल इस सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक थे। दादू का जन्म 1544 ई. में हुआ था। 1574 ई. दादू ने ब्रह्म सम्प्रदाय की स्थापना की। इसके बाद जीवनपर्यन्त इसी सम्प्रदाय के विकास एवं प्रचार–प्रसार में लगे रहे। यही ब्रह्म सम्प्रदाय बाद में दादू पंथ या दादू सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हुआ।[23]

1585 ई. में इनकी भेंट मुगल सम्राट अकबर से भी हुई, उस समय संत दयाल फतहपुर सीकरी में 40 दिन का सत्संग कर रहे थे। तदनन्तर दादू पुनः अजमेर आ गए। इन्होंने गाँव–गाँव घूमकर अपने उपदेशों का प्रचार–प्रसार किया। दादू की शिष्य परम्परा में 152 शिष्य माने जाते हैं। इनमें 100 शिष्य तो आत्म चिन्तन में इतने अधिक लीन थे कि न तो इन्होंने शिष्य बनाये और न किसी स्थान विशेष पर रहे। बाकी 52 शिष्यों ने अपनी शिष्य परम्परा को अक्षुण्ण रखा। अतः उन्हें 52 थांबा कहा जाता है।

दादू दयाल बहुत पढ़े लिखे नहीं थे किन्तु बहुत श्रुत अवश्य थे। दादू ने गहन चिन्तन एवं मनन किया। तदनन्तर अपने दार्शनिक विचारों को सुस्पष्ट करने का प्रयास किया। इन्होंने परमात्मा को सर्वशक्तिमान, निराकार, स्वयंभू, समर्थ, परम दयालु माना है जो सर्वत्र व्याप्त है। उसकी शक्ति वर्णनातीत है।

दादू ने जीव एवं ब्रह्म को एक मानते हुए बताया है कि जब जीव माया या कर्मों के वशीभूत हो जाता है तभी ब्रह्म से दूर हो जाता है। माया का पर्दा जब तक गिरा रहेगा तब तक जीव ब्रह्म के साथ एकाकार नहीं हो सकेगा। वास्तव में जीव अथवा आत्मा एवं परमात्मा के बीच विभेद कराने वाली शक्ति ही माया है।

माया साँपणि सब डसे, कनक कामनी होई।
ब्रह्मा, विष्णु, महेश लौं, दादू बचै न कोई।।

दादू सच्चे मायने में एक समाज सुधारक थे। उन्होंने समाज में व्याप्त बुराइयों, आडम्बरों, ढोंग, भेद–भाव आदि का खण्डन किया है। उन्होंने हिन्दुओं

एवं मुसलमानों दोनों को समझाया है। वह जाति–पाँति एवं वर्ग–भेद के पचड़े में विश्वास नहीं करते हैं। वह स्वयं को न हिन्दू मानते हैं न मुसलमान। हिन्दू मुसलमान की एकता एवं अभिन्नता के लिए दादू ने तर्क पूर्ण भाषा में अपने विचार व्यक्त किये हैं।

राम स्नेही सम्प्रदाय

18 वीं शताब्दी में राजस्थान संक्रमण काल से गुजर रहा था। उसी समय धार्मिक क्षेत्र में एक अविस्मरणीय क्रान्ति हुई जिसे राम स्नेही सम्प्रदाय के नाम से पुकारा गया। राजस्थान में इस सम्प्रदाय के चार प्रमुख केन्द्र – रेण, शाहपुरा, सिंहथल तथा खेड़ापा में क्रमशः दरियाव जी, रामचरण जी, हरिराम दास जी तथा रामदास जी द्वारा स्थापित किये गए। ये रामानुज को अपना प्रथम आचार्य मानते हुए इन्हीं से अपनी शिष्य परम्परा प्रारंभ करते हैं।

सन्त दरियाव जी

इनका जन्म 1676 ई. में जैतारण गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम मानझा और माता का नाम गीगा था। सात वर्ष की अल्पायु में ही उनके सिर से पिता का साया उठ गया। अतः दरियाव जी अपनी माँ के साथ रेण नाना के घर आ गए जहाँ काशी के एक पण्डित स्वरूपानन्द से इनकी भेंट हुई जो दरियाव जी को काशी अपने साथ ले गए। यहाँ रहते हुए इन्होंने शास्त्र सम्मत ज्ञान प्राप्त किया।

उपनिषद् का अध्ययन करते हुए इन्होंने अनुभव किया कि बिना गुरु के ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। अतः आप गुरु की खोज में इधर–उधर भटकने लगे। 1712 ई. में प्रेमदास को इन्होंने अपना गुरु स्वीकार किया और उन्होंने इन्हें दीक्षा दी। खेजड़ा नामक स्थान पर इन्होंने साधना आरंभ की। साधना की अन्तिम मंजिल प्राप्त कर लेने पर इन्होंने स्थान–स्थान पर घूम–घूमकर उपदेश देना शुरू किया। उनके अनेक शिष्य हो गये। रेण में इनका समाधि–स्थल है। इनके समाधि–स्थल पर प्रतिवर्ष चैत्र सुदी पूर्णिमा को एक मेला लगता है जिसमें इनके अनुयायी एकत्रित होकर दिवंगत आत्मा को श्रद्धांजलि अप्रित करते हैं।

दरियाव जी की शिक्षाओं में गुरु–भक्ति एवं सत्संग पर सर्वाधिक बल दिया जाता है। उन्होंने बताया है कि गुरु भक्ति से ही मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। गृहस्थ में रहते हुए मनुष्य अपने गुरु से प्राप्त सबद का निरन्तर जाप करता है। कर्मकाण्ड में इनका विश्वास नहीं था। उन्होंने राम नाम के सुमिरन को सर्वाधिक सार्थक बतलाया है।

सन्त राम चरण

मेवाड़ राज्य में राम स्नेही सम्प्रदाय का उद्‌भव एवं विकास उत्तर मध्यकाल की एक महत्वपूर्ण घटना थी। डिग्गी तहसील के सोडा गाँव में शनिवार माघ शुक्ला चतुर्दशी विक्रम संवत् 1776 ई. को विजयवर्गीय वैश्य परिवार में रामचरण जी का जन्म हुआ। राम चरण शुरू से ही बड़े प्रतिभाशाली थे। जयपुर के नरेश ने इन्हें अपना मंत्री बना लिया था किन्तु इन्होंने राज्य की नौकरी छोड़ दी।

24 वर्ष की अवस्था में सद्‌गुरु की आवश्यकता इन्हें अनुभव हुई। गुरु की खोज में यह काफी घूमे। मेवाड़ के दाँतडा गांव में जब यह पहुँचे तो संत कृपाराम जी से इनकी भेंट हुई। गुरुवार भाद्रपद शुक्ल सप्तमी विक्रमी सं. 1808 को संत कृपाराम ने इन्हें दीक्षा दी। गुरु ने इन्हें राम नाम का मूल मंत्र दिया। सात वर्ष तक इन्होंने कठिन तप किया।

1758 ई. में रामचरण जी जयपुर के निकट गलता जी के मेले में गए। वहाँ उन्हें साधुओं में व्याप्त अनाचार और बुराईयों का कटु अनुभव हुआ। रामचरण जी का मन फट गया। वहाँ से वे भीलवाड़ा चले आए। निर्गुण भक्ति की अन्तः प्ररेणा से वे उपदेश देने लगे। शाहपुरा के राजा रणसिंह ने इन्हें बुलाया। 1769 में वे शाहपुरा चले गए। वहाँ उनके विचारों का स्वागत हुआ और उनके मानने वालों की संख्या दिन–प्रतिदिन बढ़ती ही गई।

रामचरण की पुस्तक "अणभैवाणी" है। उन्होंने गुरु महिमा पर बड़ा बल दिया है। उनकी मान्यता है कि गुरु ब्रह्मरूप होता है जो मानव को भवसागर से पार उतारता है। इसी प्रकार राम नाम के स्मरण को महत्वपूर्ण बताते हुए मोक्ष–प्राप्ति की बात कही है। उन्होंने सत्संग की महिमा बताते हुए कहा कि जिस प्रकार से गन्दा पानी गंगा में जाकर स्वच्छ हो जाता है, उसी प्रकार बुरे से बुरा व्यक्ति भी साधु–संतों का सान्निध्य पाकर उनके जैसा ही हो जाता है। इसलिए उन्होंने साधुओं की संगति में रहने का मनुष्यों को उपदेश दिया।

संत हरिराम दास जी

यह सिंहथल शाखा के प्रवर्त्तक थे। इनका जन्म सिंहथल में एक ब्राह्मण परिवार में भागचन्द जोशी के यहाँ हुआ। रामी इनकी माता का नाम था। यह गृहस्थ थे। इनकी पत्नी का नाम चांपा था। इनके पुत्र का नाम बिहारीदास था। 1743 ई. में इन्होंने जैमलदास जी को अपना गुरु बनाया।

इन्होंने कठिन साधना की। कुछ ही वर्षों की साधना के अनवरत क्रम में इन्होंने पूर्णत्व प्राप्त कर लिया तदनन्तर आप घूम–घूमकर उपदेश देने लगे।

सिंहथल में बना हुआ बड़ा रामद्वारा इस महान् सन्त की याद को ताजा कर देता है। यह रामचरण जी के समकालीन थे। अतः इनकी शिक्षाओं में काफी साम्य है।

संत रामदास जी

यह खेड़पा शाखा के प्रवर्त्तक थे। इनका जन्म 1726 ई. में बीकमकोर नामक गांव में हुआ था। पिता का नाम शादूल जी था तथा माता का नाम अणभी था। यह जाति से मेघवाल थे। बचपन में माँ के मर जाने से पिता के साथ खेड़ापा में आकर रहने लगे। यह गृहस्थ थे।

1752 ई. इन्होंने संत हरिरामदास जी से दीक्षा ली। राम नाम का महामन्त्र ग्रहण कर मेलाना में भक्ति करने लगे। 1765 ई. में यह खेड़ापा में आकर रहने लगे। यह उपदेश देने के लिए भ्रमण करते थे। इनका केन्द्र स्थल खेड़ापा ही था। इनके उपदेश सहज, सरल और बोधगम्य होते थे। इन्होंने अन्य संतों की भांति गुरु भक्ति और राम नाम के स्मरण पर बल दिया तथा समाज में व्याप्त बुराईयों, कर्मकाण्डों, ऊँच–नीच, वर्णव्यवस्था व आडम्बर आदि का खण्डन किया।

चरणदासी सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक चरणदास थे। इनका जन्म 1703 ई. में मेवात प्रदेश के टेहरा नामक गांव में हुआ था। जाति से यह ढूसर बनिया थे। इनके पिता का नाम मुरलीधर तथा माता का नाम कुंजी था।

18 वर्ष की आयु में इन्होंने साधना आरंभ की। 30 वर्ष की आयु में अपने मत का प्रचार प्रसार करने लगे। इस सम्प्रदाय के अन्तर्गत निष्काम प्रेम तथा सदाचरण पर बल देते हुए गुरु भक्ति को ही मोक्ष–प्राप्ति का एकमात्र साधन बताया गया है। टेहरा गांव में संत चरणदास की छतरी बनी है जहाँ प्रति वर्ष बंसत पंचमी को मेला लगता है।

लोक देवता

राजस्थान में त्याग, प्रेम, कर्त्तव्य पालन तथा वीरत्व के आदर्श स्थापित करने वाले कुछ ऐसे महापुरुष हुए हैं जो श्रद्धा के कारण देवता के रूप में स्वीकार किये जाते हैं और उनकी पूजा–अर्चना की जाती हैं। लोक देवता के रूप में इनकी प्रतिष्ठा हो जाने से इनकी मान्यता बढ़ी और इनकी पूजा के माध्यम से मेला आदि आयोजित कर जनता को अनौपचारिक रूप से शिक्षित करने का क्रम संचालित किया जाता है।

इस प्रकार के लोक देवताओं में गोगा जी का नाम अग्रगण्य है। गोगा जी 11 वीं शताब्दी के आस–पास हुए थे। इनके पिता का नाम जेवर और माता का नाम बाछल था। जेवर ददरेवा के शासक थे। कहा जाता है कि मोहम्मद गोरी के आक्रमण के समय गायों की रक्षा करते हुए अपने प्राण त्याग दिये थे तब से राजस्थान में गोगा जी की पूजा होने लगी और आज भी भादवा बदी 9 को गोगा नवमी के रूप में उत्सव मनाया जाता है।

गोगा जी सांपों के देवता भी माने जाते ह। ऐसा विश्वास किया जाता है कि गोगा जी को मानने वाले को सांप नहीं काटता है और यदि किसी व्यक्ति को सांप काट भी ले तो गोगा जी का भोपा उसे चूसकर ठीक कर देता है। गोगामेड़ी एवं ददरेवा की मेड़ी गोगा जी के विशेष पूजा स्थल के रूप में माने जाते हैं।

गोगा जी की भाँति ही तेजा ने भी गायों की रक्षा करते हुए प्राणों का उत्सर्ग किया था। यह नागोर परगने के खड़नाल नामक गांव के जाट जाति के थे। इनके पिता का नाम ताहड़ जी और माता का नाम राम कुंवरी था। इनकी वीरता के संबंध में अनेक लोक–कथायें प्रचलित हैं जिनसे इनके सांपों के देवता होने का यथार्थ सिद्ध होता है।

गायों की रक्षा करते हुए जब तेजा जी क्षत–विक्षत हो गए तब सुरसरा में सर्प ने इनकी जिह्वा पर डँस कर इन्हें मौत की गोद में सुला दिया। आज भी गाँवों में तेजा जी के प्रति लोगों के मन में अपार श्रद्धा है। सांप के काट लेने पर इलाज न कराके तेजा जी की तांती बांध कर ठीक होने की कल्पना की जाती है। सुरसरा में तेजा जी का मंदिर बना है लेकिन परवतसर तेजा जी का प्रमुख स्थान है। भादवा सुदी 10 को राजस्थानी ग्रामीणजन तेजा दसमी के रूप में परव–तसर में मनाते हैं। विशेषतः जाटों में तेजा जी की पूजा–अर्चना अधिक होती है।

चमत्कारों के कारण प्रसिद्धि पाने वाली लोक देवी करणी माता का नाम राजस्थान में बड़े आदर से लिया जाता है। श्री करणी जी का जन्म विक्रम संवत् 1444 की आसोज सुदी 7 को सुवाप नामक गांव में चारणों की किनिया शाखा में हुआ। इनके पिता का नाम मेहाजी तथा माता का नाम देवल बाई था।

बचपन में ही श्री करणी जी ने कुछ ऐसे कार्य किये जिनके कारण इनकी प्रसिद्धि आस–पास के प्रदेशों में फैल गई। पांच वर्ष की आयु में इन्होंने अपनी जुड़ी हुई उँगलियाँ ठीक कर दी। 6 वर्ष की उम्र में उन्होंने अपने पिता का सर्प दंश उतारकर उन्हें पुनः जीवन प्रदान किया।

श्री करणी जी के सहयोग से राव शेखा की लड़की का विवाह राव

जोधा जी के पुत्र बीका जी से हुआ था। श्री करणी जी का विवाह 29 वर्ष की उम्र में साठीका गाँव के चारण देपा जी से हुआ था। श्री करणी जी की कृपा से रणमल्ल मंडोवर का स्वामी बना था। जोधा जी के राजा बनने पर जोधपुर के किले की नींव श्री करणी जी ने ही डाली थी।

देशनोक में श्री करणी जी का प्रसिद्ध मन्दिर है। इस मन्दिर में असंख्य चूहे हैं। इनका रंग–रूप घरों में पाये जाने वाले चूहों से भिन्न होता है। ये मन्दिर में आजादी से इधर–उधर विचरण करते हैं। इन्हें खाने के लिए दूध, अनाज एवं मिठाई दी जाती है।

लोक तीर्थ

राजस्थान में लोक तीर्थ भारतीय लोक आत्मा की संवेदना को जीवित रखने की दृष्टि से मूल्यवान योगदान करने वाले हैं। ये जन जन की आस्था के केन्द्र हैं। लोक तीर्थों में से प्रत्येक स्थल पर ऐसी दिव्य शक्ति के विद्यमान होने की मान्यता है जिसके सम्पर्क में आकर मुनष्य बुराइयाँ त्याग कर अच्छाइयों की और प्रवृत्त होता है। जहाँ मुनष्य के पाप स्वतः नष्ट हो जाते हैं।

लोक तीर्थों का सम्बन्ध मानव की अन्तश्चेतना के साथ जुड़ा है। लोक तीर्थ निश्चय ही लोक धर्म के प्रतीक हैं किन्तु इनमें अद्‌भुत एकता की भावना है जिसके कारण संकीर्णता स्वतः नष्ट होती है। राजस्थान के छोटे से छोटे गाँव में, खड़े या ढाणी में भी किसी न किसी देवता या संन्यासी की मूर्ति पूजी जाती है। लोक मान्यता की अभिव्यक्ति देने वाले ये तीर्थ सभी धर्मों का एक रंग प्रदर्शित करते हुए मानव मन को उदात्तता के चैतन्य की और प्रवृत्त करने के माध्यम से प्रौढ़ शिक्षा के आलोक स्तम्भ रहे हैं।

पुष्करराज

तीर्थराज पुष्कर हमें भारतीय संस्कृति के पुरातन से जोड़ता है। यहाँ प्रत्येक पूर्णिमा को लगभग 2000 यात्री आते हैं। हर वर्ष कार्तिक शुक्ला एकादशी से कार्तिक पूर्णिमा तक पुष्कर में एक विशाल मेला लगता है जिसमें देश के कोने–कोने से लगभग डेढ़ लाख यात्री भाग लेते हैं। वैशाख शुक्ला एकादशी से वैशाखी पूर्णिमा तक एक और मेला यहाँ लगता है जिसम आस–पास के स्थानों से लगभग छः हजार यात्री भाग लेते हैं। सामान्य दिनों में भी पुष्कर की यात्रा करने वालों की संख्या काफी रहती है।

पौराणिक युग से ही पुष्कर पर स्नान, दान, तर्पण आदि का विशेष माहात्म्य है। पितामह ब्रह्मा ने पुष्कर में एक बार यज्ञ किया था। वह यज्ञ कार्तिक

शुक्ला एकादशी से पूर्णिमा तक चला था। कार्तिक पूर्णिमा को ब्राह्मणों ने पुष्कर क्षेत्र में स्थित सभी कुण्डों की परिक्रमा कर कूप में स्नान किया था। यज्ञ पूरा होने पर पुष्कर पवित्र तीर्थ बन गया। पुष्कर में लगभग 400 मन्दिर हैं जिनमें ब्रह्माजी का मन्दिर मुख्य है।

अजमेर

अजमेर में ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह है जहाँ सालाना उर्स भरता है इसमें राष्ट्रीय ही नहीं अन्तर्राष्ट्रीय धर्म यात्री आते हैं। यह हिन्दू मुस्लिम एकता का प्रतीक स्थल है। ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती का जन्म 1141 ई. में हुआ था। इनके पिता का नाम ख्वाजा गयासद्दीन था और माता का नाम माहनूर था। 15 वर्ष की आयु में इन्हें हजरत इब्राहीम कंदो जी ने दीक्षा दी। दीक्षा प्राप्त कर आप समरकंद और बुखारा गए जहाँ इन्होंने कई साल तक विद्याध्ययन किया। इसके बाद हज के लिए मदीना गए। हज के बाद मदीने से वह बगदाद गए। बगदाद में पांच महीने और सात दिन रहे। तदनन्तर गजनी होते हुए भारत आए। लाहौर व दिल्ली में कुछ समय तक रहकर आप अजमेर पधारे। आनासागर के पास ठहरकर आप सूफी मत का प्रचार करने लगे। आपसी सद्भाव, एकता और प्रेम का सन्देश देने वाले ख्वाजा गरीब नवाज मुइनुद्दीन चिश्ती भारत में सूफी सम्प्रदाय की चिश्तिया शाखा के प्रथम प्रचारक थे। 97 वर्ष की आयु में यह शरीर त्याग कर संसार से विदा हो गए।

ऐसा विश्वास किया जाता है कि गरीबों और मोहताजों को ख्वाजा भीख बाँटते हैं। उनकी कृपा से लोगों की नाकामियाँ कामयाबी में बदल जाती हैं। ख्वाजा सब पर समान रूप से कृपा करते हैं। हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई सभी उनकी कृपा के आकांक्षी होते हैं। प्रकृति की तरह यहाँ कोई भेदभाव नहीं रहता।

गलियाकोट

डूंगरपुर जिले में सागवाड़ा तहसील का गलियाकोट एक छोटा–सा गाँव है। इसी गाँव के उत्तर में लगभग 6 किलोमीटर दूर एक फकीर का मजार है जो शिया सम्प्रदाय क बोहरा मुसलमानों का बड़ा धार्मिक स्थान है। इस स्थान पर फखरुद्दीन के नाशवान शरीर को दफनाया गया था।

फखरुद्दीन राजा सिद्धराज जयसिंह (जिन्होंने गुजरात पर 1014 से 1134 ई. तक राज्य किया था) के वजीर के लड़के थे। शिया सम्प्रदाय को बढ़ाने हेतु मिश्र से इमाम–मुस्तेम–सीर ने मोलाई अहमद साहब और मोलाई याकूब साहब को भेजा, उन्होंने अपने धर्म को बढ़ाया। उन्होंने फिर मोलाई

अहमद, मोलाई अब्दुला और मोलाई नूर मोहम्मद को यमन से खम्भात में भेजा। अब्दुल्ला साहब की काफी कीर्ति फैल गई।

ये लोग खम्भात से पाटन आए जो गुजरात की राजधानी थी। अब्दुल्ला के चमत्कारों को देखकर राजा हैरान रह गया। सारा राज्य परिवार उनका शिष्य हो गया। तारमल और भारमल दोनों भाई भी इस सम्प्रदाय में शामिल हो गए। भारमल के लड़के याकूब को गुजरात में धर्म प्रसार का कार्य सौंपा गया। तारमल के लड़के फखरुद्दीन को बागड़ प्रान्त में भेजा गया।

फखरुद्दीन जब छोटे थे तभी उनमें किसी महान् संत के लक्षण नजर आने लगे थे। वह खेल–कूद से अलग रहकर एकान्त में मनन किया करते थे। गरीबों की खिदमत करते थे, भूखों को खाना खिलाते थे, रोगियों को दवा देते थे। आगे चलकर उन्होंने धर्म की पूरी तालीम पाई। फलस्वरूप ये पहुंचे हुए फकीर हो गए। उनका स्वाभाव धार्मिक तथा संन्यासी की तरह था। उन्होंने आत्मा की खोज में समय बिताया, साथ ही लोगों को चमत्कार भी बताये। इसी कारण उनकी मृत्यु–स्थल पर आगे चलकर गलियाकोट के नाम से दाउदी बोहरों का परम तीर्थ बन गया।

गलियाकोट बोहरा मुसलमानों का धार्मिक केन्द्र तो है ही, साथ ही ऐतिहासिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान भी है। गलियाकोट में फखरुद्दीन की मजार है और शीतला माता का मंदिर है। उस प्रकार गलियाकोट हिन्दू मुस्लिम वर्ग को अपनी अमृत धारा से सिंचित कर एकता को निखारता है।

ऋषभदेव

राजस्थान के दक्षिण भाग में उदयपुर से 64 किलोमीटर दूर पहाड़ी उपत्यकाओं से घिरा हुआ, कोयल नामक छोटी सी नदी पर स्थित, धुलेव नामक कस्बा है। भारत भर में यही एक ऐसा मन्दिर है जहाँ दिगम्बर तथा श्वेताम्बर जैन, वैष्णव, शैव, भील एवं माम भक्तजन स्नान कर समान रूप से मूर्ति का पूजन करते हैं। प्रतिमा की महानता एवं प्रभाव क्षमता के कारण ही यह कस्बा धुलेव ऋषभदेव जी के नाम से प्रसिद्ध है। प्रतिवर्ष लाखों व्यक्ति भारत के कोने–काने से यहाँ दर्शनार्थ आते हैं।

अपनी कार्य सिद्धि की कामना से मनौती करने के लिए ऋषभदेव आने वालों की गणना करना कठिन है। जिनका आँगन सूना है, वे सन्तति की कामना से आते हैं। जिसका लाडला बेटा बीमार है। उसकी माँ भगवान् के दर्शनार्थ आती है। मनौती करने वालों का प्रतिदिन मेला लगा रहता है।

जिनका कार्य सिद्ध हो जाता है, मानता छुड़ाने के लिए वे एकत्रित होते हैं। कोई दम्पती अपने बालक के बराबर केसर तोलकर भगवान् के चरणों में चढ़ाते हैं क्योंकि यह लाल उसी भगवान् का दिया तो है। कोई माँ भगवान् के दरबार में अपने बेटे का जडुन या (प्रथम बार बाल कटवाना) उतरवाती है क्योंकि उसी ने बच्चे की रक्षा की है। भीलों का दल कारिया बाबा की जय बोलता हुआ मन्दिर में प्रवेश करता है क्योंकि उनके अनुसार उन्हें भगवान ऋषभदेव ने ही जीने की कला सिखाई है। भगवान् सब का है, सब इसके हैं। भारत की भावात्मक एकता का विचित्र संगम स्थल है–ऋषभेदव।

ऋषभदेव जी की मूर्ति पर बहुत अधिक केसर चढ़ाई जाती है इस कारण यह केसरिया जी या केसरियानाथ जी के नाम से प्रसिद्ध हैं। ऋषभेदव जी की प्रतिमा चमकते हुए काले पाषाण की है, अतः भील लोग इनको काला जी कहकर पुकारते हैं और इनके प्रति उनकी इतनी अधिक श्रद्धा और मान्यता है कि उन्हें काला जी की आण दिलाने पर वे अपने सत्य से किंचित भी विचलित न होंगे। काला रंग इस बात का भी सूचक है कि भगवान गुणातीत है। जिस प्रकार काले रंग के आगे अन्य सभी रंग अदृश्य हो जाते हैं उसी प्रकार भगवान् की शरण में जाने पर भक्त के सारे दोष दूर हो जाते हैं, वह निर्विकार हो जाता है। धुलेव ग्राम में स्थित होने के कारण इन्हें धुलेवा धणी भी कहा जाता है।

रामदेवरा

पश्चिमी धरा का पावन धाम रूणीचा अथवा राम देवरा जोधपुर के पोकरण नामक ग्राम से 21 किलोमीटर उत्तर दिशा में स्थित हैं। यह धाम जोधपुर पोकरण रेलमार्ग एवं बीकानेर–रामदेवरा मोटर मार्ग से जुड़ा हुआ है।

रूणीचा के निर्माता बाबा रामदेव जी तंवर का अविर्भाव 15 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुआ था। उस समय राजस्थान की दशा दयनीय थी। पश्चिमी राजस्थान के सातलमेर के कुख्यात भैरव का प्रबल उत्पात था। ऐसे समय ऊंडू कासमेर नामक गाँव के पास तंवर कुल श्रेष्ठ ऊजमल जी के घर माता मेणा देवी की कोख से बाबा रामदेव का जन्म हुआ।

बचपन में हो बाबा रामदेव को योगी बालीनाथ जी ने दीक्षा दी। बाबा राम देव ने भैरव से द्वन्द्व युद्ध किया। द्वन्द्व युद्ध में परास्त होकर भैरव बाबा रामदेव से प्राणों की भीख मांगने लगा। बाबा रामदेव ने भविष्य में अपकर्म न करने का वचन लेकर उसे अभयदान दिया तथा आगरों के पास की भूमि उसके विचरण के लिए निश्चित कर दी।

भेरव के उत्पीड़न का भय मिट जाने पर वर्षों से वीरान पड़ी भूमि कृषि फिर से लहलहाने लगी। सैकड़ों उजड़े–गांव फिर से आबाद हो गए। बाबा रामदेव की ख्याति से आकर्षित होकर अमर कोट को सोढा दलैसिंह जी ने अपनी सुपुत्री नेतलदे का सम्बन्ध बाबा रामदेव के साथ कर दिया।

बाबा रामदेव ने अगला कार्यक्रम अछूतोधार का हाथ में लिया। मानव–मानव के बीच खड़ी दीवार को ढहाने के लिए बाबा रामदेव ने कामड़िया पंथ की स्थापना की। इस पंथ में दीक्षित व्यक्ति जाति–पांति, ऊँच–नीच, कुलीन–अकुलीन इत्यादि के कृत्रिम बन्धनों से मुक्त होकर संत हो जाता था।

बाबा रामदेव की समाधि स्थल पर वर्ष में दो बार–भाद्र पद शुक्ला 10 तथा माघ शुक्ला 10 को मेला लगता है। तेरहताली नृत्य इस मेले का प्रमुख आकर्षण है। इसे कामड़िया लोग प्रस्तुत करते हैं। इसमें एक कामड़िया स्त्री अपने शरीर के विभिन्न भागों पर मजीरें बाँध लेती है तथा हाथ के मजीरे द्वारा विभिन्न मुद्राओं के साथ उन्हें बजाती है। अन्य पुरुष, तम्बूरा, हारमोनियम, खड़ताल, चिमटा व मजीरा के साथ ताल देते रहते है। ये लोग बाबा रामदेव जी की जीवनी से सम्बन्धित परिचयों का गायन करते हैं। बीच–बीच में बाबा रामदेव जी का जयजयकार गूंजता रहता है।

शैव धर्म

राजस्थान में शिव पूजा का प्रचलन प्राचीनकाल से है। राजस्थान के शहर, कस्बा, गाँव या जंगल कही भी मन्दिर, देवालय या चबूतरा अवश्य मिल जाएगा जहाँ शिव लिंग स्थापित हो। मन्दिरों में जलहरी के बीच शिवलिंग, उसके साथ पार्वती, शिव का वाहन नन्दी और गणेश की मूर्ति होती है। शिवरात्रि पर विशेष पूजा की जाती है।

राजस्थान में शिव–भक्ति के अनेक मतमतान्तर पनपते रहे हैं जिनमें कापालिक और पाशुपत बहुत फैले। पाशुपत मत के प्रवर्त्तक दंडधारी लकुलीश थे। इस मत का सबसे प्रसिद्ध पीठ भगवान एक लिंग नाथ के मन्दिर के साथ कैलाशपुरी मेवाड़ में है। कापालिक श्मशान वासी थे, चिता की भस्म रमाने वाले थे और अघोर तान्त्रिक थे। शिव भक्ति के माध्यम से जनता में आस्था जगाने का जो कार्य निरन्तर किया जाता रहा, वह भी प्रौढ शिक्षा का ही एक स्वरूप था।

शक्ति पूजा

शक्ति पूजा की परम्परा भी राजस्थान में बहुत पुरानी है। बाँसवाड़ा में

त्रिपुरा सुन्दरी का मन्दिर बहुत पुराना है। जयपुर के राजवंश की आराध्य शक्ति दुर्गा आमेर में शिला देवी के रूप में है। करौली में केलादेवी, जोधपुर में नागणेची, बीकानेर में करणी माता, सीकर की जीण माता, लोहार्गल की सिंकराय माता, ओसियां की पीपाड़ माता आदि ऐसी शक्तियाँ हैं जो लोक देवियों के रूप में मूलतः पूजी जाती रहीं किन्तु अब दुर्गा के रूप में पूजी जाती है।

माँ आदि शक्ति है अतः माँ के रूप में देवियों का पूजा जाना स्त्री के प्रति आदर का भाव व्यक्त करता है। समाज में महिलाओं के लिए आदर–भाव प्रदर्शित करने की प्रेरणा दी जाती रही है। शक्ति पूजा वास्तव में समाज को व्यवस्थित रखने के लिए प्रेरक शक्ति रही हैं जो प्रौढ़ शिक्षा की ही एक विधि है।

वैष्णव धर्म

चौहदवीं सदी के बाद देश भर में भक्ति आन्दोलन चला, उसके प्रभाव से राजस्थान में वैष्णव भक्ति की धारा इतनी प्रखर हो गई कि नगर–नगर में विभिन्न भक्ति सम्प्रदायानुयायी कृष्ण मंदिर खड़े हो गए और वैष्णव भक्ति के अनुयायी बढ़ते गए।

रामानन्दी मत

वैष्णव धर्म का राजस्थान में बहुत व्यापक प्रभाव पड़ा। रामानुज मत की एक प्रमुख गद्दी जयपुर में गलता नामक स्थान में थी। इसकी परम्परा अब तक वहाँ चल रही है और जयपुर बसने से पहले के अनेक मंदिर अब भी वहाँ विद्यमान हैं।

इस वैष्णव मत का अनुसरण करने वाले रामानन्द (1400–1470) ने उत्तर भारत में इसका प्रचार किया। रामानन्द की शिष्य परम्परा में जयपुर के पयहारी स्वामी थे जिन्होंने इस प्रदेश में नाथों का प्रभाव समाप्त करके रामानन्दी भक्ति परम्परा प्रवाहित की। उनके शिष्य अग्रदास जी (16 वीं सदी के मध्य) हुए। अग्रदास जी बाद में सीकर के पास रेवास नामक गांव चले गए और वहाँ उन्होंने अपनी गद्दी स्थापित की जो आज तक चली आ रही है। अग्रदास जी राजस्थान के सांस्कृतिक इतिहास में राम की मधुर भक्ति के प्रवर्त्तक माने जाते हैं। इन्होंने राम–भक्ति पर अनेक हिन्दी काव्य लिखे।

गलता में 16वीं सदी में रामानन्द के एक शिष्य कील्हदास जी रहे जिन्होंने यहाँ के मंदिरों में रामानन्दी भक्ति को सुदृढ़ किया। इस शाखा की यह विशेषता है कि यहाँ राम की भक्ति और पूजा रागात्मिका है जो माधुर्य लक्षण भक्ति के

रूप में की जाती है। इसमें राम को एक रसिक नायक माना जाता है। जुगल सरकार (सीता व राम) की श्रृंगारिक जोड़ी पूजी जाती है। राम भक्ति की यह मधुर शाखा यहाँ की विशिष्ट देन है जिसमें राम–सीता की राम लीला आदि मध ुर लीलाएँ जोड़ दी जाती हैं। राम भक्ति की इस मधुर शाखा को सवाई राजा जयसिंह (1699–1743) ने भी प्रश्रय दिया और अपने राजकवि श्री कृष्ण भट्ट कवि कलानिधि से रामरासा लिखवाया।

कृष्ण भक्ति

राजस्थान में कृष्ण भक्ति की परम्परा बहुत पुरानी है। चित्तौड़ के निकट धोसुंडी गांव में द्वितीय शती पूर्व का एक शिलालेख मिला है जिसमें संकर्षण वासुदेव की पूजा का उल्लेख है। जोधपुर के निकट मंडोर में भी गुप्तकालीन शिला फलकों में कृष्ण लीला चित्रित है। राजस्थान में ब्रज मण्डल का विशेष प्रभाव है। यहाँ के राजाओं ने वृन्दावन जैसे स्थानों पर कृष्ण मन्दिर बनवाये और कृष्ण भक्ति के आचार्यों पर अपनी श्रद्धा प्रदर्शित की।

वल्लभ सम्प्रदाय

मुगल सम्राट् औरंगजेब की हिन्दू मंदिरों और मूर्तियों के विरोध की नीति के कारण मुगल साम्राज्य के सीधे आधिपत्य वाले नगरों से आचार्यों ने सुरक्षा की दृष्टि से अपनी मूर्तियों को हटाकर देशी रियासतों के राजाओं के संरक्षण में ले जाना श्रेयस्कर समझा।

वल्लभचार्य के आराध्य श्रीनाथ जी का गिरिराज (गोवर्द्धन) से निकलकर 30 सितम्बर, 1669 ई. गोस्वामी दामोदर जी तथा उनके चाचा गोविन्द जी द्वारा राजस्थान लाना महत्वपूर्ण घटना थी तथा 10 फरवरी, 1872 को सीहाड गाँव में उसकी स्थापना करनी थी तभी सीहाड गाँव श्रीनाथ द्वारा कहा जाने लगा और यह वल्लभाचार्य का प्रमुख पीठ हो गया।

इस सम्प्रदाय की इस प्रमुख पीठ के अतिरिक्त पुष्टिमार्ग की अन्य अनेक पीठ हैं जो वल्लभाचार्य के पुत्र गुंसाई विठ्ठलदास (1515–1558 ई.) के उत्तराधिकारियों ने अपने अपने आराध्य देव विग्रहों के नाम पर स्थापित किये। कोटा में मथुरेश जी का विग्रह है। श्रीनाथद्वारा विट्ठलनाथ जी का विग्रह है। श्रीनाथद्वारा के निकट काँकरोली में द्वारिकाधीश जी का विग्रह है। काम वन में गोकुल चन्द्रमा जी और मदनमोहन जी की पीठ हैं।

राजस्थान में 41 प्रमुख पुष्टिमार्गीय मन्दिर हैं। तीन–चार सदियों से इस भूमि पर बहने वाली इस भक्ति धारा ने यहाँ की संस्कृति को बहुत प्रभावित

किया है तथा अनेक रूपों में बृज संस्कृति और रागानुगा भक्ति की छाप छोड़ी है। मन्दिर हवेली कहे जाते हैं जिनका संगीत हवेली संगीत के नाम से प्रसिद्ध है।

निम्बार्क सम्प्रदाय

कृष्ण भक्ति की धारा में निम्बार्क सम्प्रदाय का अपना एक विशेष महत्व है। इसकी प्रमुख पीठ किशनगढ़ के पास सलेमाबाद में स्थित है। मुगल काल में अन्य वैष्णव सम्प्रदायों की भांति निम्बार्क सम्प्रदाय का भी प्रादुर्भाव वृन्दावन में हुआ। जहाँ हरि व्यास व्यास, देवचार्या ने सम्प्रदाय के पीठों का सुनियोजित पुनर्गठन किया तथा अपने बारह शिष्यों को सम्प्रदाय के प्रसार का कार्य सौंपा।

इनके प्रमुख शिष्य परशुराम देवाचार्य थे जो जयपुर राज्य के अन्तर्गत नारनोल के समीप गौड़ ब्राह्मण परिवार में जन्मे थे। उन्होंने कुछ समय तक मथुरा के नारद टीला पर साधना की। तत्पश्चात् यह निम्बार्क सम्प्रदाय की प्रमुख गद्दी राजस्थान में ले आए।

पुष्कर में कुछ चमत्कारी पीर लोगों को दिग्भ्रान्त करते थे। इन्होंने अपने योग बल से उनको परास्त किया एवं वहाँ इस वैष्णव पीठ को स्थापित किया। तब से (16 वीं सदी के आसपास) अजमेर के सलेमाबाद में यह प्रमुख पीठ स्थित है। परशुराम सागर आदि अनेक भक्ति ग्रंथों में परशुराम जी ने राजस्थानी मिश्रित हिन्दी में काव्य रचना की और राजस्थान में इस सम्प्रदाय का प्रचार–प्रसार किया। उदयपुर नगर में निम्बार्क पीठ है तथा जयपुर आदि अनेक नगरों में स्थान– स्थान पर इस सम्प्रदाय के राधा कृष्ण के मंदिर हैं।

इस सम्प्रदाय में राधा को कृष्ण की स्वकीया (परिणीता) माना जाता है और मुगल स्वरूप की मधुर सेवा की जाती है। जयपुर नरेश जगतसिंह ने संवत् 1856 में सलेमाबाद में जाकर आचार्य जी का आशीर्वाद प्राप्त किया। फलतः राजकुमार जयसिंह का जन्म हुआ। अतः इस राजवंश ने उन्नीसवीं सदी में इस सम्प्रदाय को बहुत प्रश्रय दिया और अनेक मेले आयोजित किये। इस प्रकार सम्पूर्ण मध्यकाल प्रौढ़ शिक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण रहा। इस काल में भक्ति आन्दोलन प्रखरता के साथ आगे बढ़े और विकसित हुए। लोक जीवन में आस्था का संचार हिन्दुओं ने तो किया ही, मुस्लिम सन्तों ने भी इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान किया। फलतः दोनों धर्म एक–दूसरे के निकट आए। पारस्परिक समन्वय हुआ और पारस्परिक आदर भाव भी बढ़ा।

**

अध्याय - 21

ब्रिटिश शासन काल का आरम्भ

ब्रिटिश शासनकाल प्रारम्भ हुआ उस समय भारत में 34 प्रतिशत साक्षरता थी, इंग्लैण्ड में भी उस समय साक्षरता का यही प्रतिशत था। साक्षरता का प्रतिशत भारत में तब गिरा जब यहाँ अंग्रेजी भाषा को शिक्षा का माध्यम बना दिया गया और संस्कृत, हिन्दी व राजस्थानी की शिक्षा देने वाली पाठशालाओं की मान्यता समाप्त कर दी गई। उर्दू, फारसी और अरबी की शिक्षा देने वाले मकतबों की भी पहले जैसी प्रतिष्ठा न रही।

ब्रिटिश शासनकाल के प्रारंभ में भारत की साक्षरता इंग्लैण्ड के समान होने का कारण यह था कि भारत के शासक अपनी प्रजा की शिक्षा पर ध्यान देते थे। इस यथार्थ को राजस्थान के मध्यकालीन शिक्षा केन्द्रों के आलोक में देखा जा सकता है।

राजस्थान में वैदिक कालीन परम्परा के अनुसार शिक्षा दी जाती थी जिसमें पढ़ने–लिखने के साथ–साथ धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान था ताकि विद्यार्थी अपने स्वयं के हित तो देखे ही, साथ ही अपने समाज एवं देश के प्रति भी भक्ति भाव रखे।

शिक्षा का प्रारम्भिक केन्द्र परिवार था जहाँ पिता अपने पुत्र को शिक्षा दिया करता था। पिता स्वयं अपने पुत्रों के लिए पुस्तकों की प्रतिलिपियाँ तैयार किया करता था। व्यावसायिक क्षेत्र में भी पिता अपने पुत्र को वंशानुगत धन्धे की शिक्षा देता था ताकि वह अपने वंशानुगत धन्धे में दक्ष हो सके।

शिक्षा के लिए अन्य केन्द्र थे आश्रम जहाँ शिष्य गुरु के पास जाकर रहते थे और विद्यार्जन करते थे। एकलिंग माहात्म्य में इस प्रकार का वर्णन किया गया है कि एक सोम शर्मा नामक विद्वान था जो अपने घर पर ही शिष्यों को विद्या का दान देता था। इसी ग्रंथ में भृगु आश्रम का भी उल्लेख मिलता है। जहाँ जोधपुर के महाराजा गजसिंह का पुत्र ही पढ़ा था।[24]

राजा–महाराजाओं ने कुछ ब्राह्मण पण्डितों को इस प्रकार शिक्षा का

कार्य करने के लिए आश्रमों की व्यवस्था हेतु गांव भी दे रखे थे। ये आश्रम पढ़ने एवं पढ़ाने के केन्द्र बन जाते थे। जैनियों के उपासरे भी शिक्षा के केन्द्र थे जहाँ अधिकतर धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा दी जाती थी। इसी तरह मठ भी शिक्षा के केन्द्र थे। जयानक के वर्णन से ज्ञात होता है कि 12वीं शताब्दी के अन्त तक अजमेर के कोने–कोने में मठ या पाठशालाएँ थी।[25]

उदयपुर का सवीना खेड़ा का मठ एवं जैसलमेर का कौशिक राम–मठ शिक्षा प्रचार के केन्द्र रूप में प्रसिद्ध थे। राज्य में प्रारंभिक शिक्षा के लिए कुछ स्थानीय संस्थाओं के द्वारा शिक्षा का कार्य किया जाता था। इन स्थानों के लिए पाठशाला, पोसाल, नेसाल, चोर्का आदि नामों का प्रयोग किया जाता था। सोमकवि ने राणकपुर में तथा मन कवि ने राजनगर में इस प्रकार की पाठशाला का वर्णन किया है।

महाविद्यालय स्तर की शिक्षा का बड़ा केन्द्र चौहान शासकों के काल में अजमेर था। विग्रहराज चतुर्थ ने यहाँ सरस्वती मंदिर की स्थापना की थी जिसे कुतुबुद्दीन ऐबक ने तोड़कर मस्जिद के रूप में परिवर्तित कर दिया। जैन ग्रंथों से पता चला है कि उस समय चित्तौड़ भी शिक्षा का बड़ा केन्द्र था। इसी तरह भीनमाल ब्राह्मणी शिक्षा का बड़ा केन्द्र था और आबू तांत्रिक शिक्षा का केन्द्र था।[26]

मुस्लिम शिक्षा के सन्दर्भ में दरगाह रिकार्ड्स के आधार पर गोपीनाथ शर्मा ने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि मुस्लिम शिक्षा के लिए भी राजस्थान में एक व्यवस्था थी। उदाहरण के लिए अजमेर में ख्वाजा साहब की दरगाह शरीफ के खादिमों के बच्चों के लिए एक 'मकतब' खोला गया था जहाँ एक मौलवी रहता था जो बच्चों को पढ़ना–लिखना सिखाने के साथ–साथ कुरान शरीफ भी पढ़ाता था। उच्च शिक्षा के लिए 'मदरसा' होता था। बच्चों को उर्दू, अरबी एवं फारसी भाषा सीखाई जाती थी तथा कुछ गणित का ज्ञान भी कराया जाता था।

मध्यकालीन शिक्षा के क्षेत्र में पुस्तकालय का बहुत बड़ा योगदान रहा है। अच्छी पुस्तकों के बिना शिक्षा की प्रगति के लिए आशा करना दुराशा मात्र सिद्ध होता है। मध्यकाल में राजस्थान में पुस्तकालयों की समुचित व्यवस्था देखने को मिलती है। इसीलिए राजस्थान में हस्तलिखित ग्रंथों का विशाल भण्डार है। उन ग्रंथों को बस्तों को बण्डलों में बाँधकर रखा जाता था। राज दरबारों, मठों उपासकों, सामन्तों या सेठों के निजी संग्रहों में इन ग्रंथों को रखा जाता था।

ब्रिटिश शासन के द्वारा शिक्षा की इस प्रचलित व्यवस्था को देखा गया और भारत की जनता में व्याप्त साक्षरता के प्रतिशत का अवलोकन किया गया। इस सर्वेक्षण में इस बात पर भी ध्यान दिया गया कि राज्यों की ओर से भले ही शिक्षा पर समुचित ध्यान नहीं दिया जाता किन्तु जन–सहयोग से शिक्षा के स्तर को बनाये रखा जाता है।

शासन की ओर से शिक्षा के पारम्परिक स्वरूप को निर्धारित करने के नाम पर शिक्षा प्रणाली व्यवस्थित की गई। 1835 ई. में अंग्रेजी भाषा को राजकीय भाषा के रूप में घोषित कर दिया गया। अतः अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली का महत्व बढ़ गया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी प्रशासन द्वारा जगह–जगह स्कूल खोले गए। अजमेर, पुष्कर, श्रीनाथ एवं केकड़ी में पहले स्कूल खोले गए। इन स्कूलों में ईसाई धर्म की शिक्षा को प्रधानता दी जाती थी और बाईबल की कहानियों के माध्यम से शिक्षा देने का प्रयत्न किया जाता था। फलतः जनता के विरोध का इन स्कूलों को सामना करना पड़ा।

जनता में यह आशंका व्याप्त हो गई थी कि इन स्कूलों में ईसाई धर्म की शिक्षा के द्वारा बच्चों को ईसाई बनाया जाएगा। यह आशंका बढ़ती गई। अंग्रेजी सरकार के प्रति उभरते और बढ़ते संदेह ईसाई शिक्षा को आरंभ करने वाले पादरी केरी ने भी अनुभव किया था। उसने अजमेर–मेरवाड़ के सुपरिटेण्डेण्ट को लिखा कि लोगों को शंका है कि कहीं उनके बच्चों को कलकत्ता ले जाकर ईसाई धर्म की दीक्षा न दिला दे।[27] स्थानीय जनता के असहयोग के कारण इन स्कूलों को बंद करना पड़ा।

1842 ई. में पण्डित रूप नारायण की सहायता से अलवर में एक स्कूल स्थापित किया गया। कालूराम शर्मा के अनुसार राजस्थान के राज्यों में अंग्रेजी शिक्षा की शुरुवात का पहला प्रयत्न अलवर के महाराजा बन्नेसिंह ने किया। बन्नेसिंह ने शिक्षा के क्षेत्र में काफी रुचि प्रदर्शित की। उसने छात्रवृत्तियाँ देने एवं पुस्तकें खरीदने के लिए पर्याप्त धन दिया।

1842 ई. में ही भरतपुर में भी एक अंग्रेजी स्कूल खोला गया। 1844 ई. में जयपुर में महाराजा स्कूल खोला गया।

अंग्रेजी स्कूलों के कारण जो वातावरण बन रहा था उससे पाठशालाओं और मदरसों का महत्व कम होता गया फलतः इन संस्थाओं में अध्यापन कार्य कराने वाले मौलवी और पण्डित घर–घर जाकर अनौपचारिक शिक्षा के कार्य में लीन हो गए। साथ ही जनता में अंग्रेजों के और अंग्रेजी शिक्षा के बारें में जानकारी

देने लगे।

अग्रेजों द्वारा इस स्थिति को भली प्रकार समझा गया और इसके साथ ही यह अनुभव किया गया कि यदि राजस्थान में अंग्रेजी राज्य की जड़ों को मजबूत बनाना है तो राजपूत शासकों, राजकुमारों तथा सामन्त पुत्रों की शिक्षा हेतु विशेष व्यवस्था करनी होगी। वे अच्छी तरह जानते थे कि राजपूत लोग शिक्षा प्राप्त करने तथा किसी प्रकार की कला सीखने को अपनी प्रतिष्ठा के विरुद्ध मानते हैं। साथ ही अपने पुत्रों को अपने से निम्न स्तर की जातियों के लड़कों के साथ पढ़ाने को तैयार नहीं हैं। इसलिए अंग्रेजी अधिकारियों ने सामन्त पुत्रों की शिक्षा हेतु विशेष स्कूल खोलने का निश्चय किया। इसी निश्चय के अनुरूप जयपुर, जोधपुर, उदयपुर बीकानेर एवं अलवर के नरेशों को प्रेरित कर सामन्त पुत्रों की शिक्षा हेतु विशेष स्कूल खोलने की व्यवस्था की गई।

इतना ही नहीं राजस्थान नरेशों को अंग्रेजी शिक्षा देने के लिए भी अंग्रेजों द्वारा सशक्त प्रयास किये गए। इस सन्दर्भ में उन्होंने अपने विश्वसनीय शिक्षकों को नियुक्त किया जैसे भरतपुर के शासक बलवन्तसिंह की शिक्षा हेतु पॉलिटीकल एजेन्ट को नियुक्त किया, जयपुर महाराजा रामसिंह के लिए पं. शिवदीन को शिक्षक नियुक्त किया। इसी प्रकार उदयपुर के शम्भूसिंह एवं सज्जनसिंह, अलवर के शिवदान सिंह, भरतपुर के जसवन्त सिंह के लिए विशेष शिक्षकों की नियुक्ति की गई।[28]

स्त्री शिक्षा के लिए भी अंग्रेजी द्वारा प्रयास किए गये किन्तु राजस्थान की जनता में अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली के प्रति कोई उत्साह न था। जन–सामान्य की रुचि न होने के कारण स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति की कोई संभावना नहीं थी। मध्यकाल में ही मुस्लिम शासन काल संघर्ष का काल था, अतः स्त्री शिक्षा पर ध्यान नहीं दिया गया था। स्त्रियाँ शिक्षा के प्रति उदासीन थी।

मध्यकाल में स्त्रियों के शील की रक्षा के दृष्टिकोण से बाल–विवाह की प्रथा का प्रचलन हो गया था। यह विवाह प्रथा अंग्रेजों के शासनकाल में और अधिक व्यापक हो चुकी थी। बाल्यावस्था में विवाह हो जाने के कारण बालिकाओं के पढ़ने–लिखने की ओर प्रवृत्त होने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता था। उन्हें घर–गृहस्थी के कार्यों में प्रवृत्त किया जाता था।

समाज में स्त्रियों को शिक्षा के प्रति विशेष उत्साह न था इसलिए माता–पिता बालिकाओं को पढाने–लिखाने में रुचि नहीं लेते थे। माता–पिता यदि रुचि लेते भी थे तो उस समय समाज में योग्य अध्यापिकाओं का अभाव

था जो बालिकाओं को पढ़ाने के लिए समय दे सकें। उन्हें योग्य बनाने में रूचि ले सकें।

स्त्रियों में शिक्षा के अभाव का सबसे महत्वपूर्ण कारण स्त्री–शिक्षा के प्रति सार्वजनिक रुचि का अभाव था। उन्हें करना तो गृहस्थी का कार्य ही है जिसके लिए पढ़ने–लिखने की आवश्यकता वे अनुभव नहीं करते थे।

उस समय स्त्रियों में पर्दे की प्रथा थी। घर के बाहर का वातावरण उनके लिये जैसे वर्जित था। घर से बाहर स्त्रियाँ बहुत कम निकलती थी। निकलती भी थी तो मुख पर घूँघट का आवरण डालकर। वस्त्र इस प्रकार पहनती थी कि शरीर का कोई भी अंग दिखाई न दे।

समाज में अशान्ति व्याप्त थी। रियासती शासन प्रणाली होते हुए भी अंग्रेजी का अकुंश था और दोनों के बीच कूटनीतिक दाँव–पेंच चलते ही रहते थे। इस कारण लोग समझते थे कि स्त्रियों का घर से बाहर जाना निरापद नहीं है। इसलिए लड़कियों के अभिभावक उन्हें स्कूल भेजने के लिए तैयार न होते थे। स्कूल ही नहीं लड़कियों को घर से बाहर कहीं भी भेजने को तैयार न होते थे।

1857 का वर्ष

1857 में सारा देश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन का विरोध करने के लिए उठकर खड़ा हो गया। राजस्थान भी उससे अछूता न रहा। राजस्थान में शिक्षा का काम करने वाले लोग ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन स्थापित हो जाने के बाद से लगातार अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली के विरूद्ध वातावरण बनाने में लगे रहे। उन्होंने शिक्षा का कार्य करना एक प्रकार से बन्द कर दिया था।

अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली का विरोध करने के स्थान पर शिक्षा का कार्य करने वालों को रचनात्मक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए था। वे हिन्दी, राजस्थानी, संस्कृत अथवा जिस भाषा में चाहते, अध्यापन कार्य करते और शिक्षा के द्वारा जनता को जागृत करते तो अपने उद्देश्य में अधिक सफल हो सकते थे लेकिन नकारात्मक दृष्टिकोण अपनाने के कारण जनता को निरक्षरता के अन्धकार में धकेलने का कार्य उन्होंने परोक्ष रूप से किया।

अंग्रेजी शासन के विरूद्ध वातावरण बनाने का प्रयत्न भी किया गया। सारे देश में जो हवा चली, वह रोटी और कमल के माध्यम से राजस्थान में भी प्रयास किया गया किन्तु देश के इस प्रथम स्वतन्त्रता–संग्राम में राजस्थान का अपेक्षित योगदान न रहा। इसमें सन्देह नहीं कि यदि राजस्थान ने भी उस समय सक्रियता से योगदान किया होता तो अंग्रेजों का भारत में टिकना असंभव हो जाता।

राजस्थान सहयोग करता भी तो कैसे? स्वतंत्रता–संग्राम का नेता बहादुर शाह जफर को बनाया गया जो मुगल वंश का अन्तिम सम्राट कहा गया। मुगलों के साथ राजस्थान के अधिकतर राजाओं के सम्बन्ध अच्छे न रहे थे इसलिये उनका साथ देने का प्रश्न ही नहीं उठता था।

1857 के प्रथम स्वतंत्रता–संग्राम में द्वितीय पंक्ति के नेता नानाजी हो, ताँत्या टोपे हो अथवा झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, सब के सब मराठे थे। मराठी सेनाओं का राजस्थान के राजाओं को बड़ा कटु अनुभव था। अपनी समृद्धि के समय मराठी सेनाओं ने राजस्थान की रियासतों को जी–भरकर लूटा था।

राजस्थान की जनता ने भी मराठी सेनाओं की लूट–मार वाली प्रवृत्ति के कारण भारी हानि को सहन किया था। घरों को बर्बाद होते देखा था। सम्पत्ति को उजड़ते देखा था। मराठों के द्वारा रियासतों के राजमहलों की महिलाओं के आभूषण लूटे जाने का दृश्य देखा था। यहाँ तक कि हिन्दू पद पादशाही का नाम लेने वालों के द्वारा नाथद्वारा के श्रीनाथ जी का मन्दिर तक को लूटा जाते देखा था। इसलिए मराठों के साथ न तो राजाओं की सहानुभूति थी और न जनता ही मराठों का साथ देना चाहती थी। राजस्थान में जनता का सहयोग पाने के लिए ताँत्या टोपे ही बार बार आता रहा।

राजस्थान में अंग्रेजों ने अपने को सुरक्षित अनुभव किया और राजस्थान के स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने का कारण उन्होंने यह माना कि राजाओं, राजकुमारों, सामन्त पुत्रों पर अंग्रेजी शिक्षा ने ऐसा प्रभाव अंकित किया है जिसके कारण वे 1857 के संग्राम में तटस्थ बने रहे थे। राजस्थान में कहीं कहीं छुट–पुट घटनाएँ अवश्य घटीं जिन पर शीघ्र ही काबू पा लिया और नियन्त्रण स्थापित करने में रियासती राजाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा।

1857 की घटनाओं से उत्साहित होकर अंग्रेजों ने राजस्थान में अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली को प्रभावशाली ढंग से लागू करने का अभियान चलाया। 1861 में अजमेर में एक विद्यालय को उच्च माध्यमिक परीक्षा हेतु कलकत्ता विश्वविद्यालय से सम्बद्ध कर दिया गया। 1868 में इसे इण्टरमीडिएट कॉलेज और 1861 में इसे डिग्री कॉलेज बना दिया गया।

1844 ई. में जयपुर में महाराजा स्कूल खोला गया था। 1847 ई. में पहली बार यहाँ आधुनिक शिक्षा प्रणाली लागू की गई थी। 1873 में इसे महाराजा कॉलेज बना दिया गया। जोधपुर में 1867 में जनता के सहयोग से स्कूल खोला गया। दो वर्ष बाद इसे सरकारी नियन्त्रण में ले लिया गया। इसका

नाम दरबार स्कूल रख दिया गया। धीरे–धीरे कई स्कूल बने और 1893 ई. में यह जसवन्त कॉलेज बना जो इलाहबाद विश्वविद्यालय से सम्बन्ध किया गया।

उदयपुर में महाराणा शंभूसिंह के समय शंभूरत्न पाठशाला की स्थापना की गई जहाँ हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, फारसी और अंग्रेजी की पढ़ाई होती थी। महाराणा सज्जनसिंह ने इसे 1885 ई. में हाई स्कूल बनाकर महाराणा हाईस्कूल नाम रखा तथा इस स्कूल को इलाहबाद विश्वविद्यालय से सम्बद्ध किया गया।

महाराणा फतहसिंह के समय में इसे इण्टरमीडिएट कॉलेज बना दिया गया।[29] बूँदी में वहाँ के शासक रामसिंह ने तथा झालावाड़ में पृथ्वीसिंह ने अंग्रेजी शिक्षा के स्कूल खोले। 1877 में बीकानेर में तथा 1890 ई. में जैसलमेर में स्कूल खोला गया। 19 वीं शताब्दी अन्त तक डूँगरपुर, बाँसवाड़ा, प्रतापगढ़ में भी अंग्रेजी शिक्षा के स्कूल खोले गये।[30]

अंग्रेजों ने राजस्थानी नरेशों का और अधिक विश्वास प्राप्त करने के लिए मेयो कॉलेज खोलने का निश्चय किया। तदर्थ 1870 ई. में अजमेर में एक विशिष्ठ दरबार लगा। उसी में लॉर्ड मेयो ने राजस्थानी शासकों एवं सामन्त सरदारों की शिक्षा हेतु एक विशेष कॉलेज खोलने की बात रखी जिसे राजस्थानी शासकों ने स्वीकार करते हुए इसके निर्माण हेतु चन्दा भी दिया। अतः 1885 ई. में मेयो कॉलेज खोला गया।[31]

प्रौढ़ शिक्षा की दृष्टि से अन्धकार का काल

उन्नीसवीं शताब्दी का काल राजस्थान के लिए प्रौढ़ शिक्षा की दृष्टि से निराशा और अन्धकार का काल था। इस समय मराठों के रोज–रोज लूटमार के कारण घबराकर राजस्थान की रियासतों ने ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ समझौता कर लिया और स्वयं को सुरक्षित अनुभव किया।

मराठों की लूटपाट के समय जन–सामान्य में शिक्षा के प्रचार–प्रसार का कार्य सुचारु रूप से चलाये जाने की कल्पना की नहीं जा सकती थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन काल में अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली के साथ जन–मानस की सहानुभूति का न होना शिक्षा के अभाव का कारण बना।

1857 के बाद ब्रिटिश शासन द्वारा उत्साहपूर्वक सारे राजस्थान में अंग्रेजी स्कूल खोले गए और उनमें हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू, फारसी, संस्कृत आदि की शिक्षा का प्रबन्ध किया गया। साथ ही तकनीकी व दस्तकारी की शिक्षा के लिए भी व्यवस्था की गई लेकिन जनता का ध्यान शिक्षा के प्रति फिर भी आकर्षित न हुआ।

19 वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में राजस्थान को अकाल और महामारी

का सामना करना पड़ा। फलतः अनेक स्कूल बन्द हो गए। जन–सामान्य को भूख और मृत्यु का सामना करना पड़ा। अभावों ने जनता की स्थिति विषम कर दी। 1905 में उपलब्ध संख्या के अनुसार यद्यपि राजस्थान में 647 नये आधुनिक स्कूल खोले गए फिर भी निरक्षरता सारे प्रदेश में व्याप्त थी। सबसे अधिक साक्षर लोग सिरोही की छोटी रियासत में थे जहाँ केवल 12.4 प्रतिशत लोग साक्षर थे। स्त्रियों में शिक्षा का उस समय प्रतिशत नगण्य था।

***

अध्याय - 22

नव जागरण काल

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में राजस्थान के जागने का क्रम शुरू हो गया था। इस सम्बन्ध में स्वामी दयानन्द सरस्वती का राजस्थान भ्रमण महत्वपूर्ण माना जाता है। स्वामी जी उदयपुर 1882 में आकर सात महीने तक रहे थे। उनके प्रवचनों में जो बातें कही गई थीं उनका प्रभाव जन–जीवन पर बहुत पड़ा था। जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि और उत्तम होता है।

स्वामी जी ने शाहपुरा व जोधपुर का भी भ्रमण किया था। वास्तविकता यह है कि स्वामी दयानन्द के द्वारा राष्ट्रीय गौरव भावना को पुनःजागृत करने का प्रयत्न इतिहास की एक बड़ी घटना है। मेवाड़ में 1887 में आर्यसमाज की स्थापना की गई। आर्यसमाज के द्वारा शिक्षा के माध्यम से भारतीय राष्ट्रीयता और राजनीति का प्रचार प्रसार किया गया।

यह समय था जब अनुभव किया जाने लगा था कि स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करना है तो भारतीय राष्ट्रीयता के जागरण की आवश्यकता को अनुभव करना ही होगा और यह प्रौढ़ शिक्षा के माध्यम से ही संभव हो सकता है। मेवाड़ का बिजौलिया आन्दोलन इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

बिजौलिया में किसानों का आन्दोलन 1897 में प्रारंभ हुआ। 1899 में दुर्भिक्ष ने किसानों को इतना दीन–हीन बना दिया कि आन्दोलन का रास्ता अपने–आप छूट गया क्योंकि इस वर्ष हैजा एक महामारी के रूप में फैला जिसने किसानों को निम्नतम स्तर का जीवन व्यतीत करने को विवश कर दिया।[32]

1900 के दुर्भिक्ष से किसान संभल भी नहीं पाये थे कि 1903 में बिजौलिया में एक नया चॅवरी कर लगा दिया गया। इस अमानवीय कर से पीड़ित होकर किसान राव कृष्णसिंह से मिले तथा उनसे इस कर को समाप्त करने के लिए अनुनय विनय की। राव ने उनकी बात नहीं मानी। इस पर किसानों ने विरोध स्वरूप जमींन को जोतना छोड़ दिया तथा वे समीपवर्ती क्षेत्रों में चले गए। इस निर्वसन का परिणाम यह हुआ कि राव को चँवरी के साथ अनेक अन्य बेगारों को भी समाप्त करना पड़ा तथा किसानों ने उन्हें भूमि पड़ती न छोड़ने का वचन दिया।[33]

विजय सिंह पथिक 1914 में जब बिजौलिया पहुँचे उस समय किसानों में सहयोग का अभाव था। विजय सिंह पथिक ने अनुभव किया जब तक किसान उपने उद्देश्य के प्रति पूरी तरह समर्पित न होंगे तब तक संगठन सुदृढ़ नहीं होगा। इसके लिए उनके सामने लक्ष्य स्पष्ट होना चाहिए। उनका मत सुदृढ़ होना चाहिए। विचारधारा में दृढ़ता शिक्षा के द्वारा ही आ सकती है।

बिजौलिया में विजयसिंह पथिक ने विद्या प्रचारिणी सभा की स्थापना की जिसके माध्यम से एक पुस्तकालय, पाठशाला व अखाड़े को भी विकसित किया।[34]

वे दिन में पाठशाला में विद्यार्थियों को राष्ट्रीय चेतना से ओत–प्रोत शिक्षा देते थे। रात्रि में किसानों से भेंट करते और प्रौढ़ शिक्षा के माध्यम से उनका ज्ञान विकसित करते। इस माध्यम से गांव–गांव घर–घर किसानों से सम्पर्क करते थे।

सन् 1916 ई. में मेवाड़ रेजीडेंट बिजौलिया के आगमन के अवसर पर बेगार करते समय गिरधारी कुम्हार की मृत्यु हो गई थी। इसी क्रम में 1917 में बिजौलिया राव की माता राणावत जी को छोड़ना धूणा की माता जी के दर्शन हेतु जाना था जिसमें किसनों को 15 दिन की बेगार करनी थी, अतः किसानों ने जब इस बेगार का प्रतिरोध किया तो मार–पीट कर बेगार के लिए विवश किया गया। परिणामस्वरूप बेगार से लौटने पर 300 किसानों ने बेगार न करने की प्रतिज्ञा की।[35]

दृढ़ प्रतिज्ञ होने के पश्चात् भी किसान नेतृत्व के अभाव में दिशाहीन और असफल ही रहे। इस कमी को आने वाले वर्षों में विजयसिंह पथिक ने प्रौढ़ शिक्षा के माध्यम से पूरा किया। उन्होंने ऐसे कार्यकर्त्ताओं का निर्माण किया जो उनकी अनुपस्थिति में भी नेतृत्व का सफलतापूर्वक संचालन करे सकें।

प्रौढ़ शिक्षा द्वारा किसानों में अभूत पूर्व जागृति उत्पन्न की गई जिससे आन्दोलन का वातावरण बना। सन् 1917 ई. में हरियाली अमावस्या के दिन ऊपर माल पंच बोर्ड के नाम से एक शक्तिशाली संगठन स्थापित किया गया जिसके द्वारा क्रान्ति का बिगुल बजाया गया। मन्ना पटेल को पंचायत का सरपंच बनाया गया।

हरियाली अमावस सुखद शुभ मुहूर्त को जान लो।
स्वतन्त्रता के हित अब धर्म युद्ध को ठान लो।[36]

बिजौलिया किसान आन्दोलन का भारतवर्ष के स्वाधीनता–संग्राम के

इतिहास में विशेष महत्व है क्योंकि यह भारत वर्ष का प्रथम अहिंसात्मक सत्याग्रह आन्दोलन था जिसकी राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की थी। मेवाड़ के तत्कालीन रेजिडेन्ट ने इसे बोल्शेविक क्रान्ति की संज्ञा दी थी।[37] इस आन्दोलन को सशक्त बनाने एवं उसे सफलता के शिखर तक पहुँचाने में विजयसिंह पथिक का महत्वपूर्ण योगदान है किन्तु उतना ही मूल्यवान योगदान प्रौढ़ शिक्षा का भी रहा जिसके माध्यम से जन–जागरण किया गया। किसानों को संगठित बनाये रखा गया। ऐसे कार्यकर्ताओं का निर्माण किया गया जिन्होंने आन्दोलन को सफल बनाने के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

प्रताप सभा

प्रातः स्मरणीय महाराणा प्रताप का नाम स्वतंत्रता आन्दोलन के वातावरण में मंत्र के समान उत्प्रेरक रहा है। सन् 1915 ई. में उदयपुर में प्रताप सभा की स्थापना की गई। इस सभा का उद्देश्य शिक्षा के क्षेत्र में इस प्रकार विकास करना था जिसमें स्वतंत्रता के मूलभूत विचार हो और प्रत्येक व्यक्ति स्वावलम्बी बने। इसके लिए प्रताप पुस्तकालय की स्थापना की गई। राष्ट्रीय भावना को जागृत करने के लिए राजस्थानी साहित्य, वीरोचित साहित्य आदि प्रकाशित कर समय– समय पर वितरित कराया गया।[38]

राजस्थान महिला विद्यालय

नारी जागरण की ओर महिला शिक्षा को अग्रसर करने का दायित्व निभाने की दृष्टि से श्री भेरूलाल गेलड़ा ने 1916 ई. एक कन्या पाठशाला की स्थापना की। समाज में व्याप्त कुरीतियों को समाप्त करने का लक्ष्य लेकर इस कन्या पाठशाला का शुभारम्भ किया गया।

इस संस्था के द्वारा महिलाओं में शिक्षा का प्रचार–प्रसार किया गया। उनमें आत्म विश्वास जागृत किया गया। आत्म–निर्भरता की ओर अग्रसर होने की क्षमता प्रदान की गयी। महिलाओं में व्याप्त कुरीतियों एवं कुण्ठाग्रस्त रूढ़ियों के विरूद्ध चैतन्य जागृत किया गया जिससे कि एक स्वस्थ, सशक्त और समृद्ध समाज के निर्माण का लक्ष्य प्राप्त किया जा सके।

विद्या विभाग

1928 ई. में कांकरोली के साहित्यकारों द्वारा एक शिक्षण संस्था 'विद्या विभाग' की स्थापना की गई जिसका लक्ष्य साहित्यिक एवं शैक्षणिक प्रवृत्तियों द्वारा राष्ट्रीयता से ओत–प्रोत जन चेतना जागृत करना था और युवा वर्ग को

देश की गतिविधियों से परिचित कराना एवं जन–जीवन में राष्ट्र–प्रेम के बीज उत्पन्न करना था। इसके द्वारा समय–समय पर साहित्यिक गोष्ठियों का आयोजन किया गया एवं सान्ध्यकालीन शिक्षण केन्द्र चलाये जाते थे जिनमें युवकों और प्रौढ़ों को देश व राज्य में घटने वाली घटनाओं की जानकारी दी जाती थी तथा स्थानीय समस्याओं पर विचार किया जाता था।[39]

श्री गुरुकुल

चित्तौड़गढ़ में श्री गुरुकुल की स्थापना 1929 ई. में की गई थी।[40] आर्य समाज का आन्दोलन मौलिक रूप से धार्मिक क्रान्ति का स्वरूप था किन्तु जगह–जगह आर्य समाज द्वारा शिक्षण संस्थाए खोली गई जिसके माध्यम से समाज को आर्य समाज की विचारधारा से परिचित कराना उसका लक्ष्य था। स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित आर्य समाज देश में स्वधर्म, स्वदेशी भाषा और स्वदेशी संस्कृति अपनाने पर बल दे रहा था। आर्यसमाज की उसी लहर में स्थापित श्री गुरुकुल का लक्ष्य देश और धर्म की सेवा में तन मन धन एवं सर्वस्व लगाने वाले उत्तम कोटि के स्नातक तैयार करना था।

महिला मण्डल

10 नवम्बर, 1935 को उदयपुर में श्री दयाशंकर श्रोत्रिय द्वारा महिला मण्डल स्थापित किया गया। यह संस्था नारी जागरण का सशक्त आधार प्रस्तुत करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण शिक्षा केन्द्र सिद्ध हुआ है। महिला मण्डल द्वारा महिलाओं के अनेक प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र खोले गए जिनके माध्यम से पर्दा प्रथा, रूढ़िवादिता, अशिक्षा एवं अस्पृश्यता आदि के उन्मूलन में महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ अर्जित की गई। महिला मण्डल द्वारा अनाथ स्त्रियों की सुरक्षा व्यवस्था पर विशेष ध्यान दिया गया।

स्वतंत्रता सेनानी श्री दयाशंकर श्रोत्रिय महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने के पक्षधर थे। इसीलिए उन्होंने महिला मण्डल को इस प्रकार विकसित किया कि महिलाएँ उद्योगों का प्रशिक्षण लेकर उनमें सक्रियता के साथ संलग्न हों और आत्म–निर्भर बनें।

महिला मण्डल द्वारा महिलाओं को घरेलू एवं कुटीर उद्योगों का प्रशिक्षण देने का क्रम आरम्भ किया गया। उद्योग धन्धों के प्रशिक्षण के साथ–साथ उन्हें धन्धें में प्रवृत्त होने की प्रेरणा दी गई एवं उनके द्वारा तैयार माल की बिक्री की समुचित व्यवस्था कर उन्हें प्रोत्साहित किया गया।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने महिला मण्डल को आशीर्वाद दिया था–राजस्थान को आगे बढ़ाओं। स्वयं सेविकाएँ तैयार करो ऐसे शुभ कार्य में मेरा आशीर्वाद है।[41]

साहित्य मण्डल नाथद्वारा

1937 ई. में नाथद्वारा में साहित्य मण्डल की स्थापना की गई। केन्द्रीय पुस्तकालय, बाल पुस्तकालय एवं चल पुस्तकालय द्वारा नवसाक्षरों के शिक्षा क्रम को निरन्तरित करने की व्यवस्था की गई। प्राचीन साहित्य शोध, हिन्दी साहित्य सम्मेलन परीक्षा केन्द्र एवं साहित्य विद्यालय और स्वाध्याय मण्डल के माध्यम से इस संस्था के द्वारा साहित्यिक गतिविधियों का व्यापक प्रचार किया गया। रंगमंच एवं स्वाध्याय गोष्ठियों का आयोजन कर शिक्षा का प्रसार किया गया।[42]

विद्या भवन

1931 ई. विद्या भवन प्राथमिक विद्यालय के रूप में यह संस्था प्रारंभ की गई।[43] जनता में भारतीय संस्कृति के प्रति प्रेम जागृत करने के कारण इस संस्था की अति प्रतिष्ठा रही। प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान के कारण यह संस्था निरन्तर विकसित होती गई। आज तो प्राथमिक, उच्च माध्यमिक विद्यालय, शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, कला संस्थान एवं रूरल इन्स्टीट्यूट, सेवा मंदिर आदि अनेक शिक्षण संस्थाओं के साथ इसकी सम्बद्धता है।

राजस्थान विद्यापीठ

21 अगस्त, 1937 ई. को पं. जनार्दनराय नागर द्वारा हिन्दी विद्यापीठ की स्थापना की गई। इसका लक्ष्य राष्ट्र भाषा हिन्दी के माध्यम से शिक्षण दीक्षण देकर जन सामान्य को राष्ट्रीयता से ओत–प्रोत करना था। राष्ट्रीय जागरण का लक्ष्य लेकर विद्यापीठ द्वारा सृजनात्मक और रचनात्मक प्रयास किये गए।[44]

राजस्थान विद्यापीठ में रात्रि में प्रौढ़ शिक्षा की कक्षाएँ चलायी गई जिनमें दुकानों तथा होटलों में काम करने वाले किशोर पढ़ने आते थे। कारखानों में काम करने वाले मजदूरों को जहाँ शिक्षा दी जाती थी। खेतों में काम करने वाले किसानों और खेतिहर मजदूरों को शिक्षा दी जाती थी।

राजस्थान विद्यापीठ द्वारा अनपढ़ जनता को शिक्षित करने के लिए विभिन्न प्रवृत्तियाँ संचालित की गई। ग्रामीण जनता को शिक्षित करने के लिए जहाँ गांव–गांव प्रोढ़ शिक्षा केन्द्र स्थापित किये गए वहीं शहरी जनता को शिक्षित करने के लिये भी सशक्त प्रयास किये गए।

राजस्थान विद्यापीठ द्वारा चलाये जा रहे प्रौढ़ शिक्षा के व्यापक कार्यक्रमों को देखकर ही तत्कालीन महाराणा भूपाल सिंह इतने अधिक प्रभावित हुए थे उनके द्वारा 21 अगस्त, 1948 को इसे लोक शिक्षण का विश्वविद्यालय घोषित किया गया। इसका नाम भी उस समय राजस्थान विश्वविद्यापीठ कर दिया गया।

राजनैतिक परिस्थितियों की विवषता ने राजस्थान विद्यापीठ को विश्व–विद्यालय के रूप में चलाने की स्वीकृति न दी किन्तु राजस्थान विद्यापीठ के कार्यकर्त्ताओं की तपस्या के अनवरत क्रम को अन्ततः सफलता मिली ही। जनवरी 1987 ई. में राजस्थान विद्यापीठ को विश्वविद्यालय की मान्यता प्राप्त हो ही गयी।

स्वावलम्बी शिक्षण कुटीर

स्वावलम्बी शिक्षण कुटीर की स्थापना सन् 1942 की क्रान्ति के समय मेवाड़ के जननायक श्री माणिक्य लाल वर्मा के सानिध्य में कपासन में हुई। आरम्भ से ही बाल मन्दिर, किसान मजदूर रात्रि शाला, लोक मंच आदि विभिन्न प्रवृतियाँ इस संस्था द्वारा संचालित की गई।

सन् 1945 से कुटीर को कांकरोली में स्थानान्तरित कर दिया गया। शिक्षण कुटीर का लक्ष्य समाज के लोगों को पूर्ण साक्षर एवं स्वावलम्बी बनाना था। इस संस्था के द्वारा बाल–बालिकाओं को शिक्षा प्रदान करने के अतिरिक्त जनता को देश की समयानुकूल परिवर्तित परिस्थितियों का व्यावहारिक ज्ञान दिया जाता रहा है। साथ ही सामजिक पर्व, जयन्तियाँ आदि मनाने के आयोजन इसके द्वारा किये जाते रहे हैं।[45]

राजस्थान में ऐसे भी अनेक लोग हुए हैं जिनके द्वारा किसी संस्था का निर्माण भले ही नहीं किया गया किन्तु जिनके व्यक्तिगत कार्य इतने प्रभावशाली रहे कि समाज में उन्हें कभी भुलाया नहीं जा सकता। प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में वह अपने आप में किसी संस्था से कम प्रभावशाली सिद्ध नहीं हुए हैं।

इस तरह के लोगों में एक हैं **गोविन्द गुरु** जो स्वयं तो बनजारा जाति के थे किन्तु आदिवासियों में जो काम उन्होंने किया उसके लिए उन्हें आज भी आदिवासी श्रद्धा के साथ याद करते हैं। गोविन्द गुरु ने आदिवासियों के बीच काफी भ्रमण किया था और उस भ्रमण के दौरान उन्होंने आदिवासियों की गरीबी देखी, उनके अभावों को देखा। उनके जीन में आने वाली कठिनाईयों को देखा तथा इनके कारणों को भी जाना–पहचाना और कारणों के निवारण के लिए तपस्या की एवं दिशा बोध दिया।

गोविन्द गुरु ने अनुभव किया कि आदिवासियो में नशे की लत है जिसके कारण ये तबाह होते जा रहे हैं। जहाँ–जहाँ वह गए आदिवासियों से नशा त्यागने के लिए अनुरोध किया। उनके प्रयासों का परिणाम हुआ हजारों आदिवासियों ने नशा त्याग देने की प्रतिज्ञा की और हमेशा के लिए नशा त्याग दिया।

गोविन्द गुरु ने देखा था, आदिवासियों में अनेक ऐसे लोग हैं जो चोरी करते हैं। उन्होंने चोरी की आदत पर अंकुश लगाने की प्रेरणा दी। फलतः लोगों ने चोरी न करने और अपने श्रम के बल पर आजीविका कमाने की प्रतिज्ञा की। इससे आदिवासियों के जीवन में सुधार आए।

उन्होंने देखा, आदिवासियों के जीवन में गन्दगी रहती है। इस कारण अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। इसलिए उन्होंने स्वच्छता के साथ रहने की प्रेरणा दी। इससे अनेक रोगों से बचा जा सकता है। गोविन्द गुरु की इस प्रेरणा से लोगों ने प्रतिज्ञा की कि वे नित्य नियम से स्वयं स्नान करेंगे और अपने बच्चों को भी स्नान करने की आदत डालेंगे। साथ ही कपड़ों की स्वच्ता पर भी ध्यान देंगे।

आदिवासियों को उन्होंने परमात्मा का नाम लेने की प्रेरणा दी। नारियल के साथ अग्नि जलाकर होम करने की शिक्षा दी। उन्हें बताया कि वे भी इन्सान हैं और समाज में आदर पाने का उनको भी उतना ही अधिकार है जितना किसी और को हैं।

गोविन्द गुरु के प्रयासों से आदिवासियों में जागरण का युग आरंभ हुआ था और आचरण की पवित्रता का क्रम शुरू हुआ था। परिवर्तन की एक लहर चली थी किन्तु आदिवासियों में आए जागरण को उदयपुर, डूंगरपुर, बाँसवाड़ा, सिरोही का प्रशासन सहन नहीं कर पाया। रियासती प्रशासन के दमन चक्र ने न केवल गोविन्द गुरु को यातानाएँ दी अपितु आदिवासी भी शासन के दमन के शिकार हुए।

दमन के कारण परिवर्तन की लहर धीमी पड़ गई। उसमें अपेक्षित गति नहीं रही किन्तु आदिवासियों में जागरण आज भी है और इसी कारण गोविन्द गुरु का स्मरण आज भी श्रद्धा के साथ किया जाता है।

इस संदर्भ में **मोतीलाल तेजावत** का योगदान सराहनीय रहा है। इतिहास में उनका नाम अमर रहेगा। उन्होंने प्रौढ़ शालाएँ नहीं चलाई किन्तु उन्होंने गांव–गांव जाकर भीलों को मादक पदार्थों के सेवन का त्याग करने की प्ररेणा दी एवं लूट–पाट की प्रवृत्ति को त्यागने की शपथ दिलाई। श्री तेजावत ने आदिवासियों को व्यवस्थित जीवन अपनाने की ओर प्रवृत्त कर उनम सामाजिक

क्रान्ति का श्री गणेश किया। श्री तेजावत की प्रेरणा से आदिवासियों ने अत्याचार सहन न करने एवं किसी भी प्रकार की बेगार न करने का संकल्प लिया।

श्री तेजावत ने आदिवासियों की स्थिति सुधारने के लिए जो प्रयत्न किये उनसे सामन्ती शासन सावधान हो गया और तेजावत तथा उनके प्रयासों को प्रभावहीन करने के लिए सक्रिय हो गया। श्री तेजावत की प्रेरणा से चलने वाले भीलों के एकी आन्दोलन को कुचलने के लिए सामन्ती शासन ने कमर कस ली। शासन ने हिंसक प्रवृत्ति अपना ली तो भीलों के तेवर भी बदले। स्थिति की भयानकता का अहसास श्री तेजावत को हो गया।

उन्होंने भीलों को संयम में रहकर आन्दोलन को अहिंसात्मक ढंग से चलाने का उपदेश दिया। श्री तेजावत को मार डालने के प्रयास भी सामन्ती शासन द्वारा किये गये, जिन्हें तेजावत के अनुयायियों ने विफल कर दिया।

भीलों में जागरण की जो लहर व्याप्त हुई वह मेवाड़ के आस–पास कई राज्यों में आग की तरह फैल गई। इस जन–जागरण का प्रभाव आज भी आदिवासियों में देखा जाता है।

***

अध्याय - 23

स्वातन्त्र्योत्तर काल

देश जब स्वतन्त्र हुआ तो राजस्थान के वातावरण में बहुत बड़ा परिवर्तन आया क्योंकि यहाँ जनता ने दोहरे शासन से मुक्ति पाई थी। ब्रिटिश शासन से सारा देश मुक्त हुआ था किन्तु राजस्थान की जनता ने तो रियासतों के सामन्ती शासन से भी मुक्ति पाई थी। इसलिए देश में आई स्वतन्त्रता की लहर के अनुरूप वातावरण का निर्माण करने के लिए जन–जीवन की मानसिकता को ढ़ालने का महत्वपूर्ण कार्य सामने था।

राजस्थान की जनता शिक्षा के अभाव के कारण घोर अन्धकार में थी इसलिये प्रौढ़ शिक्षा का कार्य यहाँ बहुत अधिक कठिन कार्य था। राजस्थान में ऐसी अनेक संस्थाएँ थीं जो स्वतंत्रता के संघर्ष काल में प्रौढ़ शिक्षा के माध्यम से समाज सेवी कार्यकर्ताओं का निर्माण करने की साधना में रत रही थीं और स्वतंत्रता सेनानियों की संरचना का दायित्व भी निभाती रही थी। उस समय इस तरह की संस्थाओं को सरकार का कोप भाजन बनना पड़ता था। अब वह समस्या तो न रही लेकिन अब निरक्षरता के अंधकार से सीधा आमना सामना था।

स्वतंत्रता संघर्ष के काल में प्रौढ़ शिक्षा के माध्यम से जहाँ एक ऐसा वातावरण बनाने का लक्ष्य सामने रहता था जिसमें जनता के सामने स्वतंत्रता प्राप्त करने का लक्ष्य हो। अब प्रौढ़ शिक्षा के माध्यम से राष्ट्र–निर्माण का लक्ष्य था जिसके लिए वातावरण भी बनाना था और कार्यकर्त्ता भी तैयार करने थे।

समाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया

देश की स्वतंत्रता के वातावरण में जनतन्त्रीय शासन प्रणाली को अपनाने का निश्चय किया गया। राजतंत्र से प्रजातंत्र के युग में देश ने प्रवेश किया। राजस्थान की जनता ने दोहरे शासन के बन्धनों से मुक्त होकर स्वयं के शासन का सवेरा देखा। एक नया क्रान्तिकारी परिवर्तन गुलामी की यन्त्रणाओं से जड़ीभूत मानसिकता के लिए चमत्कारी परिवर्तन था। इस सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को देखते रहने से ही कार्य चलने वाला नहीं था। राजस्थान के जन–जीवन की सक्रियता भी इसके लिए अपेक्षित थी।

सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में भागीदार बनने की क्षमता अर्जित करने की भी आवश्यकता थी। राजस्थान में व्याप्त निरक्षरता इस दिशा में बड़ी बाधक थी क्योंकि अनपढ़ जनता द्वारा किसी भी सामाजिक क्रान्ति को नहीं लाया जा सकता। निरक्षरता के अन्धकार को दूर करने के लिए सरकार ने योजना बनाई, सार्थक प्रयास करने का निश्चय किया। स्वयं–सेवी संस्थाओं ने भी इसी दिशा में सक्रियता दिखाई।

प्रौढ़ शिक्षा का कार्य करने वाले कार्यकर्त्ताओं के सामने जो कठिनाईयाँ आईं उनमें सबसे भयानक कठिनाई जनता की उदासीनता थी। बूढ़े तोते राम–राम नहीं करते अर्थात् उनके मन में यह भ्रान्ति थी कि बूढ़े तोते को राम–राम नहीं सिखाया जा सकता। तात्पर्य यह है कि बूढ़े व्यक्ति के स्वभाव को बदला नहीं जा सकता।

मानवता के इतिहास में ऐसे उदाहरण हैं जिनसे सिद्ध होता है कि बहुत अधिक उम्र हो पर जिन लोगों ने पढ़ाना–लिखाना सीखने का क्रम शुरू किया, उन लोगों ने कीर्तिमान स्थापित किये हैं। इस दृश्टि से महर्षि बाल्मीकि का उदाहरण दृष्टव्य है।

जनश्रुति के अनुसार पहले **बाल्मीकि** रत्ना नामक डाकू थे जो भी व्यक्ति जंगल से होकर निकलता, उसे वह लूट लेते थे। बाधा डालने पर उसे मार भी डालते थे। एक बार उधर से नारद जी निकले उनको भी रत्ना ने पकड़ लिया। नारद जी हँसने लगे। रत्ना ने हँसने का कारण पूछा। नारद जी ने कहा : लूटने मारने का पाप तुम किसलिये करते हो? रत्ना ने कहा : अपने परिवार का पेट पालने के लिए।

नारद जी ने कहा जिनके लिए तुम यह पाप करते हो उनमें से कोई भी पाप का दण्ड भोगने को तैयार न होगा। रत्ना ने कहा जब वे सब मेरी कमाई खाते हैं तो इसके लिए मिलने वाले दण्ड में भी भागीदार बनेंगे। नारद जी ने कहा तुमने उनसे कभी पूछा नहीं। यदि पूछोगे तो सच्चाई का पता चल जाएगा।

रत्ना ने जब परिवार वालों से पूछा तो उन लोगों ने कहा, हम सबका पालन–पोषण करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। इस कर्त्तव्य का पालन तुम किस प्रकार करते हो ? इससे हमारा कोई लेना–देना नहीं है। हम इसके दण्ड के भागीदार नहीं हो सकते।

रत्ना लौटकर आया तो उसकी आँखें खुल चुकी थी। वह नारद जी के चरणों में आ गिरा। लुटपाट छोड़ देने की प्रतिज्ञा की और पाप से निवृत्ति का

उपाय पूछा। नारद जी ने राम–राम जपने का उपदेश दिया और वह चले गए।

रत्ना ने राम–राम जपना शुरू किया। उसके साथ ही उसने–लिखना आरम्भ किया। उसका जीवन–क्रम बदल गया। सर्वथा नया जीवन अपनाने वाले रत्ना का नाम बाल्मीकि हो गया और वह इतने बड़े विद्वान् बने कि उन्होंने रामायण जैसा महाकाव्य लिखा। उन्हें आदि कवि बाल्मीकि के नाम से प्रसिद्धि मिली। यह उदाहरण कार्यकर्त्ताओं के लिए उत्साहवर्द्धक था। उनके मन में यह धारणा बनी कि पढ़ने–लिखने व सीखने की कोई आयु नहीं होती। आदमी जब चाहे पढ़ना लिखना सीख सकता है। कहा भी गया है कि विद्या और धन व्यक्ति को अजर–अमर मानकर अर्पित करते रहना चाहिए और हर क्षण स्वयं को मृत्यु के वशीभूत मानकर धर्म करते रहना चाहिए।

इस सम्बन्ध में महाकवि **कालिदास** का उदाहरण भी प्रेरणादायक है। जो आरम्भ में इतने मूर्ख थे कि जिस पेड़ की डाली पर बैठे थे उसी को कुल्हाड़ी से काट रहे थे। इनकी मूर्खता को देखकर पंडितों ने सोचा इस मूर्ख से काशी की राजकुमारी का विवाह करा दिया जाय तो उनकी हार का बदला पूरा हो जाएगा। वे पंडित राजकुमारी विद्यावती से शास्त्रार्थ में हार गये थे और उन्हें उस हार के कारण अपमानित होना पड़ा था।

पंडितों ने कालिदास को सजाया–सँवारा और राजसभा तक ले गए। शास्त्रार्थ के समय कालिदास को समझा दिया था कि उसे मौन बने रहना है। पंडितों ने अपने शास्त्रीय ज्ञान का उपयोग कर ऐसा षड्यन्त्र रचा कि कालिदास को शास्त्रार्थ में विजयी घोषित कर दिया गया। कालिदास की राजकुमारी से शादी हो गई लेकिन बातचीत के दौरान कालिदास की मूर्खता छिपी न रही। राजकुमारी को पता चला कि पंडितों ने उसके साथ षड्यन्त्र किया है। उसने कालिदास को अपमानित कर राजमहल से बाहर निकाल दिया।

कालिदास ने पढ़ने–लिखने में मन लगाया और इतने विद्वान् बने कि उन्हें कवि कुल शिरोमणि माना जाता है। विद्वानों में उन्हें पूज्य माना गया। आज भी महाकवि के रूप में कालिदास का नाम आदर से लिया जाता है।

महर्षि **बोपदेव** ने भी चालीस वर्ष की आयु में पढ़ना–लिखना आरम्भ किया था। पढ़–लिखकर वह महान् विद्वान बने। कहा जाता है कि उन्होंने पनघट पर देखा, रस्सी रखने की जगह पत्थर पर भी निशान पड़ गये हैं। इससे उन्हें प्रेरणा मिली की रस्सी जैसी कोमल चीज के बार–बार रगड़ से पत्थर जैसी कठोर वस्तु पर निशान पड़ सकते हैं तो लगातार प्रयास करने से बुद्धि विकसित

क्यों नहीं हो सकती। यही प्रेरणा उनके जीवन के लिये वरदान बन गई।

कार्यकर्त्ताओं को लगा यदि वे भी प्रयास करते रहे तो जनता में व्याप्त उदासीनता को दूर किया जा सकता है। प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में साधनारत कार्यकर्त्ताओं ने जनता में व्याप्त अन्ध–विश्वासों को दूर करने वाली बातों की चर्चा की। परम्परागत रूढ़ियों के विरूद्ध वातावरण बनाया और मनुष्य–मनुष्य के बीच भेदभाव करने वाली बातों से दूर रहने की प्रेरणा दी।

कार्यकर्त्ताओं ने नागरिकता का सामान्य ज्ञान भी दिया। उन्होंने बताया, जमाना बदल गया है अब इस देश के मालिक तुम हो। तुम जिन्हें चुनोगे वे ही अब देश का शासन चालाएँगे। उन्होंने बताया कि अब हर व्यक्ति को वोट देने का अधिकार है। उन वोटों की गणना की जाती है। बहुमत प्राप्त करने वाला व्यक्ति विजयी घोषित होता है। इस प्रकार चुने हुए लोग विधान सभाओं और संसद में शासन चलाते हैं।

कार्यकर्त्ताओं द्वारा जनतन्त्रीय शासन प्रणाली का स्वरूप बताने से लोगों की जड़ता भंग हुई। उनमें साक्षर ज्ञान के प्रति भी उत्सुकता जागी। उन्हें लगा पढ़ने–लिखने से बुद्धि की जड़ता दूर होती है। वाणी परिष्कृत होती है। समाज में आदर बढ़ता है। पाप की ओर से मन हटता है। चेतना प्रसन्न होती है। इस प्रकार प्रौढ़ शिक्षा के लिए वातावरण बनने लगा।

समाजोपयोगी चैतन्य का विस्तार

राजस्थान की जनता में व्याप्त निरक्षरता का प्रमुख कारण गरीबी है। प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने वाले कार्यकर्त्ताओं के द्वारा इस सत्य को हृदयंगम किया गया। जो बच्चे कभी स्कूल नहीं गए अथवा स्कूल गए तो बीच में से ही पाठशाला जाना जिन्होंने बन्द कर दिया, उसका कारण परिवार में आर्थिक कठिनाईयों का होना था। परिवार की आर्थिक स्थिति ने उन्हें विवश किया कि वे पढ़ना छोड़कर परिवार की स्थिति को संभालने के लिए पैसा पैदा करने में जुटे।

प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र तक अनपढ़ व्यक्ति को लाने के लिए भी यही कठिनाई सामने आई कि अपना काम छोड़कर कोई पढ़ने के लिए केन्द्र पर आने को उत्सुक न था। खाली समय में भी प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों पर वे इसलिये आना नहीं चाहते थे क्योंकि वे इसे निरर्थक समझते थे। पढ़ना लिखना सीखने से उन्हें क्या मिलेगा। यह प्रश्न उनके मन में घुमड़ता था। इसे वे व्यक्त भी करते थे। साथ ही समाज में पढ़े–लिखे लोगों को रोजगार के लिए मारा–मारा घूमना उनके लिए उदाहरण था जिसे वे कार्यकर्त्ताओं के सामने प्रस्तुत करते थे।

प्रौढ़ शिक्षा को उपयोगी बनाने की दृष्टि से इस प्रकार के कार्यों का इसमें समावेश करना आवश्यक हो गया था जिनसे प्रौढ़ यह अनुभव करे कि पढ़ लिखकर या सीखकर उसकी स्वयं की आय में बढ़ोतरी हो सकती है। इसके लिए प्रौढ़ों के उद्योग धन्धों से सम्बन्धित ज्ञान उपलब्ध कराने की योजना को क्रियान्वित किया गया।

जब तक समाज में लोग भूखे और अज्ञानी हैं तब तक पढ़े लिखे पर उनकी ओर ध्यान न देने का कलंक लगा ही रहेगा। जनता की शिक्षा की उपेक्षा करने के पाप का प्रायश्चित समाज के प्रत्येक व्यक्ति को साक्षर करके ही किया जा सकता है। इसके लिए अनपढ़ व्यक्ति को कुटीर उद्योग अथवा घरेलू उद्योग का प्रशिक्षण भी उपयोगी हो सकता है।

प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों पर इस प्रकार की व्यवस्था की गई। जिससे लोगों को किसी–न–किसी हस्तकला का प्रशिक्षण मिल सके। इस तरह की व्यवस्था में इस बात का ध्यान रखा गया कि उसी हस्तकला के प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाय जिसके लिये आवश्यक साम्रगी उस क्षेत्र में सुलभ हो।

वह किसान जो मिट्टी को रोंदता है और रात–दिन एक कर अपने खून पसीने से एक से हजारों दाने उत्पन्न कर दिखाता है उसे मिट्टी की प्रकृति समझाने की आवश्यकता अनुभव की गई। खेती के सम्बन्ध में आधुनिक यंत्रों की जानकारी देने पर ध्यान दिया गया। साथ ही आधुनिक विधियों के बारे में बताने का प्रबन्ध किया गया। खेती के लिए उपयोगी विज्ञान की नवीन उपलब्धियों के बारे में जानकारी देने की भी व्यवस्था की गयी।

सहकारिता आन्दोलन देश में प्रारंभ किया गया था। इसका तात्पर्य था व्यक्ति परस्पर सहकारिता के आधार पर एक दूसरे का सहयोग करे और निरन्तर आगे बढ़ता जाये। प्रौढ़ शिक्षा के द्वारा इस आन्दोलन की सफलता के लिए उपयुक्त वातावरण बनाने का प्रयास किया गया ताकि मिल–जुलकर आगे बढ़ने में रुचि लेकर विकास करें। प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों में बताया गया कि लोग किस प्रकार सहकारी समितियों से बैंकों से व सरकार से ऋण प्राप्त कर सकते हैं। क्या करने से वे अधिक–से–अधिक फसल उगा सकते हैं तथा फसल का मूल्य कहाँ ले जाकर बेचने से अधिक से अधिक प्राप्त किये जा सकते हैं?

प्रौढ़ शिक्षा को समाजोपयोगी बनाने की दृष्टि से मशीनों के बारे में जानकारी देने की व्यवस्था की गई। उनके उपयोग के बारे में बताने की आवश्यकता प्रतिपादित की गई। श्रमिकों की कार्य–कुशलता कैसे बढ़ सकती है? इस

सम्बन्ध में चिन्तन किया गया ताकि श्रमिक अपनी आय बढ़ाने की क्षमता अर्जित करने के लिए प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों की ओर आकर्षित हों।

उत्साह का वातावरण

साक्षरता कार्यक्रम के अनुभव में अनेक ऐसे स्त्री पुरुषों को देखा गया जिनके लिये आरंम्भ में थोड़ा–सा पढ़ना या कुछ वाक्य लिखना अत्यन्त कठिन था किन्तु प्रौढ़ शिक्षा की कक्षाओं में आने के बाद उनके लिए न केवल आसान हो गया बल्कि उनके मस्तिष्क में भी नई चेतना आई। उनकी बुद्धि नये–नये क्षेत्रों में प्रवेश करने लगी और उनकी वाणी और लेखन में भावनाओं को व्यक्त करने की नई क्षमता आई।

प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रम में यह अनुभव हुआ कि मनुष्य की आयु जितनी बढ़ती जाती है, मनुष्य उतना ही धीमा पड़ता जाता है क्योंकि आयु की वृद्धि के साथ–साथ उसकी शक्तियाँ क्षीण होती जाती हैं। प्रौढ़ व्यक्ति काम को धीरे–धीरे इसलिए करते हैं क्योंकि वे जानते हैं जल्दी का काम शैतान का होता है। वे जानते हैं कि जो काम शक्ति और धैर्य के साथ किया जाता है उसमें गलती की संभावना बहुत कम रहती है। प्रौढ़ व्यक्ति काम को जल्दी निपटाने की जगह इस बात पर ध्यान देता है कि काम सही हो और पक्का हो।

अनुभव से यह शिक्षा भी ग्रहण की गई कि प्रौढ़ को सिखाने पर बल नहीं दिया जाना चाहिए। उन्हें सीखने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए क्योंकि प्रौढ़ सीखने का दृढ़ निश्चय जब कर लेता है तो उसके मार्ग में शारीरिक कमजोरी बाधक नहीं हो सकती। उसकी इच्छा–शक्ति उसे आगे बढ़ने के लिये–प्रेरित करती है। उसका अपना अनुभव उसे लगातार कोशिश करने का सम्बल प्रदान करता है। उसका व्यावहारिक ज्ञान उसमें उत्साह का संचार करता है।

प्रौढ़ों में सीखने की प्रवृत्ति का जागना ही सफलता का संकेत है क्योंकि सीखने के लिए प्रेरित होने के पश्चात् प्रौढ़ का उत्साह देखते ही बनता है। सीखने के लिए प्रेरित होकर जब प्रौढ़ इस ओर प्रवृत्त होता है तो यह मान लेना चाहिए कि आधा काम हो गया क्योंकि इसके बाद तो प्रौढ़ स्वयं ही निरन्तर आगे बढ़ता रहता है। प्रौढ़ शिक्षक की भूमिका उत्साह को बढ़ाने का हो तो सफलता निश्चित मान लेनी चाहिए।

ग्रामीण विकास की आवश्यकता

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने कहा था – अपना भारत गाँवों में बसता है।

इसलिए भारत राष्ट्र का विकास करना है तो गाँवों का विकास किया जाना चाहिए। उन्होंने यह भी कहा था गांव अपने आप में एक पूर्ण ईकाई है। हर गाँव अपने–आप में एक छोटा भारत है। यदि पूरी शक्ति लगाकर गांवों को विकसित किया जाये तो भारत का विकास होता जाएगा।

गाँव के विकास की दृष्टि से तीन संस्थाओं को महत्वपूर्ण माना जाता है। पंचायत, पाठशाला और स्वास्थ्य केन्द्र। प्रौढ़ शिक्षा का इन तीनों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। पंचायत के चुनावों से विधान सभा और लोक सभा के चुनावों का आभास मिलता है। पंचायत के कार्य जनतन्त्रीय शासन प्रणाली की पद्धति को मूर्तिमान कर दिखाते हैं।

प्रौढ़ शिक्षा का तात्पर्य स्वस्थ समाज का निर्माण करना है। इसके लिए स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों की जानकारी प्रौढ़ कार्यक्रमों में दी जाती है जिससे प्रौढ़ों को सामाजिक स्वास्थ्य और व्यक्तिगत स्वास्थ के सामान्य नियमों का ज्ञान होता है।

पाठशाला और प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र दोनों का काम शिक्षा का है। पाठशाला में औपचारिक शिक्षा दी जाती है जबकि प्रौढ़ शिक्षा को ग्राम विकास के साथ सम्बद्ध किया गया।

नये वातावरण की ओर – देश की स्वाधीनता के अनुरूप नया वातावरण बनाने पर विशेष रूप से ध्यान दिया गया। समाज में व्याप्त कुरीतियों के निवारण की दृष्टि से कार्यक्रम निर्धारित किये गये। उदाहरण के लिए, बाल–विवाह की बुराईयों की ओर संकेत किया गया। यह बताया गया कि बाल विवाह से बालिकाएं कच्ची उम्र में ही माताएँ बन जाती हैं जिसके कारण उनका स्वास्थ्य कमजोर हो जाता है और लगातार कमजोर होता जाता है। बच्चे अधिक पैदा होते हैं जिससे प्रदेश की जनसंख्या लगातार बढ़ती जाती है।

इसी तरह दहेज प्रथा की बुराईयों के बारे में बताया गया कि दहेज के कारण न जाने कितनी महिलाओं को तरह–तरह की यन्त्रणाएँ सहनी पड़ती हैं। अनेक महिलाओं को जलाकर या जहर देकर मार डाला जाता है। दहेज के कारण नौजवानों में बिकने की प्रवृत्ति बढ़ती जाती है। इसमें आत्म–निर्भरता की प्रवृत्ति विकसित नहीं हो पाती।

अन्धविश्वासों के विरूद्ध वातावरण बनाया गया। मत्यु–भोज पर अन्ध–विश्वास के कारण अनाप–शनाप खर्च किया जाता था जिससे परिवार प्रायः कर्ज में डूब जाता था। प्रौढ़ शिक्षा के माध्यम से यह समझाने का प्रयास किया

गया कि मृत्यु भोज पर जो खर्च किया जाता है, वह व्यर्थ है। यदि स्वर्गवासी आत्मा की शान्ति के लिए कुछ करना ही है तो कोई ऐसा कार्य करना चाहिए जिससे लोक कल्याण हो। दूसरे लोगों का भला हो।

प्रौढ़ शिक्षा के माध्यम से इस तरह के प्रयास किये गए जिनके द्वारा देश का वातावरण स्वतन्त्रता की गरिमा के अनुरूप बने। लोग साक्षर हो और समाज के लिए समर्पण से काम करने का लक्ष्य अपनाएँ।

मानव मूल्यों की स्थापना – राजस्थान की धरती, सन्तों, साधुओं, सतियों और वीरों से धन्य हुई और होती रही है। इसलिए राजस्थान के त्याग और बलिदान की परम्परा को जीवित बनाये रखने के लिए परोपकार के आदर्श को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया गया। स्वतंत्रता पश्चात् देश में स्वार्थ का बोलबाला हो गया। लोगों में अपने लिए जीने की प्रवृत्ति बढ़ती गयी। इसलिए यह बताने का प्रयास किया गया कि अपने लिए जिओ लेकिन दूसरों को जीने का मौका दो। यथा सम्भव दूसरों की सहायता भी करो।

चरित्र–निर्माण शिक्षा का मूल उद्देश्य रहा है। इसलिए प्रौढ़ शिक्षा में इसे महत्व दिया गया। गांवों में निरक्षरता भले ही बहुत थी किन्तु ग्रामीण जनों में परस्पर प्रेम था, सहयोग का भाव था। हिल–मिलकर आगे बढ़ने की चेतना थी। इसलिए चरित्र–निर्माण की प्रेरणा उन्हे दी जाती थी लेकिन इससे अधिक प्रेरणा उनसे ग्रहण करने का अवसर मिलता था।

राजस्थान के इतिहास से ज्ञात होता है कि मानव मूल्यों के लिए यहाँ संघर्ष किये गए हैं। मानव मूल्यों की रक्षा के लिए लोगों ने प्राण तक न्यौच्छावर किये हैं। इसलिए मानव मूल्यों की स्थापना पर विशेष रूप से बल दिया गया।

समाज में निरक्षरता के अन्धकार को दूर करने की आवश्यकता प्रतिपादित की गई ताकि समाज में ऊँच–नीच का भेद भाव समाप्त हो। गरीब–अमीर सबको समान समझा जाय। विषमता की सभी दीवारें ढ़हा दी जाएँ। सबको समान अधिकार है। कानून के सामने सब समान हैं। वयस्क होने वाले सभी स्त्री–पुरुषों को मतदान का अधिकार प्राप्त है।

जनसंख्या नियन्त्रण – प्रौढ़ शिक्षा आन्दोलन पर जनसंख्या के भयानक विस्फोट से विपरीत प्रभाव पड़ता रहा। इसलिए यह आवश्यक समझा गया कि प्रौढ़ शिक्षा के अन्तर्गत जनसंख्या के नियन्त्रण से सम्बन्धित जानकारी प्रदान की जाय। प्रौढ़ शिक्षा के माध्यम से जितने लोगों को साक्षर करना संभव हो पाता था उससे अधिक बच्चे पैदा हो जाते थे। फलतः अनपढ़ लोगों की संख्या बढ़ती रहती थी।

इस सम्बन्ध में सरकार द्वारा अनेक प्रकार के कार्यक्रम अपनाये गए किन्तु अन्धविश्वास के कारण लोग जनसंख्या नियन्त्रण के लिए उपयोग किये जाने वाले साधनों को अपनाने में हिचकते थे क्योंकि उनके मन में यह अन्धविश्वास गहराई से जमा था कि बच्चे तो भगवान का वरदान हैं। उनकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। जनसंख्या नियन्त्रण को वे सर्वथा अप्राकृतिक मानते थे। प्रौढ़ शिक्षा द्वारा उनके अन्धविश्वास को समाप्त करने का प्रयास किया गया।

प्रौढ़ शिक्षा का कार्य वास्तव में लोक मंगल का कार्य है। समाज को बुराई से अच्छाई की ओर प्रवृत्त करने का कार्य है। निरक्षरता के अन्धकार से समाज को बाहर निकालकर साक्षरता के प्रकाश की ओर ले चलने का कार्य है। इसके लिए कठिन साधना करनी पड़ती है।

इस आराधना को सिद्ध करने के लिए ही प्रौढ़ शिक्षा का कार्यक्रर्त्ता समाजोपयोगी कार्यों को अपनाता है ताकि जनता से सीधा सम्पर्क बने और वह प्रौढ़ों को सीखने के लिए प्रवृत्त करने में सफल हो सके।

प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में किये गए प्रयोग

प्रौढ़ों को सीखने के लिए प्रेरित करने की दिशा में तरह–तरह के प्रयोग किये गए। दीवारों पर जगह–जगह साक्षरता से सम्बन्धित नारे लिखे गए। गलियों, मोहल्लों व गलियारों में जुलूस निकाले गए जिनमें निरक्षरता को दूर करने के लिए साक्षरता से होने वाले लाभों का आभास देते हुए नारे लगाये गए। प्रभात फेरियाँ आयोजित की गई। सीखने के लिए प्रेरित करने की दृश्टि से अनपढ़ लोगों के दुःख दर्द में शामिल होने का रास्ता अपनाया गया। जन सम्पर्क किया गया।

प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र

सीखने दिशा में प्रौढ़ के साथ इस प्रकार के व्यवहार का प्रशिक्षण कार्य कार्यकर्त्ताओं को दिया गया जिससे प्रौढ़ व्यक्ति केन्द्र पर अपनत्व का अनुभव करे। समाज में प्रौढ़ व्यक्ति की जो प्रतिष्ठा है उसके अनुरूप उसके साथ व्यवहार हो। उसका सम्मान हो ताकि अनपढ़ व्यक्ति का ध्यान केवल सीखने पर ही केन्द्रित रहे।

अनपढ़ व्यक्ति का जीवन जीने का अपना एक ढंग होता है। समाज, राष्ट्र एवं परिवार के सम्बन्ध में उसका अपना दृष्टिकोण होता है। इस तरह की व्यवस्था की गई की उसके दृष्टिकोण की आलोचना न की जाय। उसके भीतर हीनता के भावों को पनपने न दिया जाय। उसके विचारों को मान्यता दी जाय,

उसका आदर किया जाये। उसके गुणों की प्रशंसा की जाय ताकि सीखने के प्रति उसका उत्साह बढ़े।

प्रौढ़ शिक्षक को इस प्रकार का प्रशिक्षण दिया जाए कि वह अनपढ़ व्यक्ति के साथ मित्र की भूमिका निभाये ताकि प्रौढ़ शिक्षा पर उसका विश्वास जम सके। एक मार्गदर्शक की तरह प्रौढ़ शिक्षा के कार्यकर्त्ताओं को चाहिए कि अनपढ़ व्यक्ति को सीखने के लिए लगातार प्रेरित करता रहे। सीखने की प्रक्रिया में प्रौढ़ शिक्षा का मन्तव्य, जीवन दर्शन और लक्ष्य अनपढ़ के सामने स्पष्ट होना चाहिए ताकि वह उसे आत्मसात करने के लिए लालायित हो उठे।

बदलती धारणाएँ

राजस्थान में प्रौढ़ शिक्षा के लिए स्वतंत्रता के बाद से लगातार प्रयोग किये जाते रहे हैं। प्रयोग के साथ जो परीक्षण किये गए, उनके परिणामों से जो निष्कर्ष निकाले गए उनके अनुरूप परिवर्तन किये गए क्योंकि समय–समय पर प्रौढ़ शिक्षा के सम्बन्ध में धारणाएँ लगातार बदलती रही हैं।

साक्षरता का अर्थ यह लिया गया कि व्यक्ति को अक्षर ज्ञान इस सीमा तक करा दिया जाय कि कम से कम वह अपने हस्ताक्षर अपने–आप कर सके। अँगूठे का निशान लगाना तो बन्द हो। कुछ समय बाद जब मूल्यांकन किया गया तो पता चला कि अनपढ़ व्यक्ति को सीखने के क्रम में सुविधाजनक उपाय का प्रयोग किया गया है। अक्षर ज्ञान न कराकर केवल हस्ताक्षर करना सीखा दिया गया है। वह भी निरन्तर काम में न आने के कारण अभ्यास के अभाव में अनपढ़ भूल गया। फलतः परिणाम जहाँ का तहाँ रहा।

तब यह सोचा गया कि अनपढ़ व्यक्ति को कम से कम इतना ज्ञान तो करा ही दिया जाय कि वह स्वयं पत्र लिख सके, पढ़ सके, अपने विचारों को व्यक्त कर सके, दैनिक व्यवहार में काम आने वाले हिसाब–किताब का लेखा जोखा कर सके, इतना गणित का तो ज्ञान होना चाहिए।

निरन्तरता के अभाव में ऐसा अनुभव किया गया कि यह प्रयोग भी असफल सिद्ध होता जा रहा है। तब समाज शिक्षण का प्रयोग अपनाया गया। शिक्षण को सार्वजनिक रूप दिया गया। जहाँ प्रौढ़ शिक्षक कार्य करता हो, वहाँ इस प्रकार के कार्यक्रम आयोजित करें ताकि सारा समाज उसमें रुचि ले।

इसके साथ–साथ सामुदायिक शिक्षण का क्रम भी अपनाया गया। सम्पूर्ण समुदाय को शिक्षा के क्रम में संलग्न करने के लिए विविध कार्यक्रम अपनाये गए। सम्पूर्ण समुदाय की सहभागिता के लिए प्रयास किए गये ताकि

विकास के साथ इसकी सम्बद्धता को जोड़ा जा सके।

सबसे महत्वपूर्ण कार्यक्रम उपयोगी साक्षरता को मानकर अपनाया गया। किसान को खेती के सम्बन्ध में आधुनिक विधियों की जानकारी दी गई। विज्ञान के नवीनतम आविष्कारों के बारे में बताया गया ताकि आधुनिक यंत्रों का प्रयोग कर वह अपने उत्पादन में वृद्धि कर सके। सहकारी क्रय–विक्रय समितियों के बारे में जानकारी दी गई ताकि सूदखोरों के चंगुल से वह छूट सके। सहकारी बाजार की कार्य–प्रणाली समझायी गई ताकि वह अपनी फसल का उचित मूल्य प्राप्त कर सके।

प्रौढ़ शिक्षा के अन्तर्गत कुटीर उद्योगों और घरेलू–धन्धों के बारे में विस्तृत जानकारी दी गई ताकि ग्रामीण–जन अपने अवकाश के समय का सदुपयोग कर अपनी आय बढ़ा सकें तथा अपने जीवन को अधिकाधिक उपयोगी बना सकें। श्रमिकों को कार्य–कुशलता का प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की गई।

शिक्षा प्रणालियाँ

राजस्थान में साक्षरता अभियान को सफल बनाने के लिए अब तक अनेक प्रणालियाँ अपनायी गई हैं। इनमें से हर प्रणाली की अपनी उपयोगिता एवं विशेषता है। प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षा प्रणाली वही सार्थक सिद्ध होती है जो प्रौढ़ की रुचि के अनुरूप होती है। साथ ही प्रौढ़ शिक्षा में सफलता प्रौढ़ एवं प्रौढ़ शिक्षक के पारस्परिक सम्बन्धों की मधुरता पर निर्भर रहती है।

प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रम को इस प्रकार चलाया जाये कि प्रौढ़ में सीखने की लगन उत्पन्न हो जाए। लगन उत्पन्न होते ही प्रौढ़ अपनी सम्पूर्ण बुद्धि और सम्पूर्ण क्षमता का उपयोग करता है। फलतः सीखने में सफल होता है।

अनुभव ने यह सिद्ध किया कि प्रौढ़ अभ्यास से सीखता है इसलिए अनपढ़ व्यक्ति को निरन्तर प्रोत्साहित किया जाना चाहिये। उसकी भूलों के लिए कुछ कहने से उसका दिल टूट जाता है जिससे सीखने के प्रति उत्साह कम हो जाता है। इसलिए अनपढ़ व्यक्ति में निरक्षरता को दूर करने के लिए संकल्प को निरन्तर बनाए रखना है तो उसके गुणों की प्रशंसा करते हुए सीखने की दिशा में आगे बढ़ाने का क्रम अपनाना चाहिए।

यह सिद्धान्त की बात है कि जिस काम में व्यक्ति को आनन्द आता है उसे सीखने क लिए व्यक्ति लालायित रहता है। यदि प्रौढ़ व्यक्ति को उसके कार्य के लिए प्रशंसा मिले तो वह लगातार आना चाहता है।

हर प्रौढ़ में कोई–न–कोई गुण अवश्य होता है। उदाहरण के लिए कोई–कोई प्रौढ़ कहानी कहने की कला में इतना पारंगत होता है कि लोग उसकी कहानियाँ घण्टों बैठे सुनते रहते हैं। कोई प्रौढ़ चुटकुले इतने अच्छे ढंग से सुनाता है कि हँसते–हँसते लोगों के पेट में बल पड़ जाते हैं। कोई–कोई अनपढ़ व्यक्ति भजन इतने अच्छे गाता है कि लोग सुनकर भाव मगन हो जाते हैं। लोकगीतों के गाने वाले अनपढ़ तो प्रायः प्रशंसा के पात्र होते ही हैं। भाषण देने की कला किसी–किसी में अद्‌भुत होती है। अनपढ़ लोगों में अच्छे कथाकार होते हैं उन्हें अपनी कला के प्रदर्शन का अवसर दिया जाना चाहिए और उनकी कला की प्रशंसा भी की जानी चाहिए।

प्रौढ़ शिक्षा पद्धतियों को अपनाते समय इस बात का ध्यान रखने की आवश्यकता होती है कि प्रौढ़ राष्ट्र के वर्तमान हैं। अतः प्रौढ़ों की सामाजिक परिस्थिति और उनकी रूचि के अनुरूप प्रौढ़ शिक्षा प्रणाली अपनाने से सफलता शीघ्र ही प्राप्त की जा सकती है। उसके व्यक्तित्व का ध्यान रखना ही उपयोगी सिद्ध होता है।

सामान्यतः अनपढ़ व्यक्ति को साक्षर बनाने के लिए परम्परागत शिक्षा प्रणाली का प्रयोग किया जाता है। इसके लिए वर्णमाला के क्रम में वर्णों का ज्ञान कराया जाता है। वर्ण, फिर शब्द और इसके बाद वाक्य सीखने का क्रम रहता है। वाक्य के बाद कहानी, गीत, निबन्ध सीखने का क्रम आता है। इस प्रक्रिया में सार्थकता को मुख्य रूप से आधार बनाने के लिए परिवर्तन भी किया जाता है।

वर्णों के क्रम में परिवर्तन करने के लिए आत्म विश्वास को जगाना आवश्यक समझा गया। इसके लिए सरलता से कठिनता की ओर ले जाने का रास्ता अपनाया गया। यह आवश्यक समझा गया कि अनपढ़ में पहले ही दिन से यह आत्म विश्वास जाग जाना चाहिये कि वह सीख सकता है। यह आत्म–विश्वास जगाने के बाद अनपढ़ व्यक्ति को शिक्षा ग्रहण करने से कोई कठिनाई नहीं रोक सकती।

इस प्रौढ़ शिक्षा प्रणाली में यह निश्चित किया गया था कि पहले दिन से ही प्रौढ़ व्यक्ति को तीन अक्षरों का ज्ञान कराया जाय। उन तीन अक्षरों से बनने वाले सभी शब्द बता दिये जाय। साथ ही वाक्य बनाना भी सिखा दिया जाय। इससे अनपढ़ व्यक्ति पहले ही दिन से अनुभव करने लगता है कि वह वर्ण ही नहीं, शब्द भी बना सकता है और वाक्य भी बना सकता है।

उदाहरण के लिए पहले दिन इस शिक्षा प्रणाली में तीन अक्षर सीखने के लिए र ग म निर्धारित हैं। पहले ा बनाना सीखने के लिए कहा जाता है फिर ा में एक आड़ी रेखा खींच कर र को बनाना सीखा जाता है। नीचे की घुण्डी के बाद रेखा हटाकर आगे एक लकीर और खींच कर ग बनाया जाता है। ग में पहली रेखा की घुण्डी से आगे की रेखा को मिलाकर म बना लिया जाता है। इन तीन र ग म और ा मात्रा से राम, राग, गाम, गार, गरम, मगर आदि अनेक शब्दों का बनाना सीखा जाता है। पहले ही दिन वाक्य बनाना भी सीखा जाता है। मा। राम राम।

इसी प्रकार इस शिक्षा प्रणाली के माध्यम से तीन अक्षर रोज सीखे जाते हैं। पिछला पाठ दुहराकर आगे बढ़ने का विधान है। इससे प्रौढ़ में आत्म–विश्वास नित्यप्रति बढ़ता जाता है और पढ़ना–लिखना आसान हो जाता है।

प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में एक ऐसी पद्धति का प्रयोग भी किया गया जिसमें खेल ही खेल के द्वारा शब्दों के सीखने की प्रेरणा दी जाती थी। इसके लिए साधन के रूप में हाथ भर रस्सी की ही जरूरत पड़ती थी। प्रौढ़ शिक्षा की इस प्रणाली के माध्यम से साक्षरता का काम करने वालों का कहना था हाथ–भर–रस्सी से ही निरक्षरता के गले में फाँसी का फन्दा लगाया जा सकता है।

हाथ भर रस्सी रखने का सबसे बड़ा यह लाभ था कि अनपढ़ व्यक्ति जहाँ कहीं मिल जाता था, वहीं खड़े होकर दीवाल पर रस्सी के माध्यम से वर्ण का चित्र बनाते और उस चित्र के द्वारा अक्षर बनाने की बात समझाते। चित्र इतना सुन्दर बनता कि अनपढ़ व्यक्ति उसे देखता रह जाता।

इस प्रौढ़ शिक्षा प्रणाली की यह विशेषता थी कि इसके लिए विशेष प्रकार के साधनों की आवश्यकता नहीं होती। हाथ–भर–रस्सी कहीं भी आसानी से सुलभ हो जाती। इसकी कमजोरी यह थी कि रस्सी के अक्षर का चित्र बनाने की कला की निपुणता प्राप्त करना आसान काम नहीं है।

वर्णों के क्रम में परिवर्तन करने वाली एक प्रौढ़ शिक्षा प्रणाली और भी थी जिसका प्रयोग किया गया है। अंग्रेजी में 0 का वर्ण अण्डे के आकार का होता है इसलिये इस पद्धति का प्रयोग करने वाले सबसे पहले 0 का वर्ण सीखने की प्रेरणा देते थे और 0 से ही अन्य वर्णों को बनाने के माध्यम से अक्षर ज्ञान कराते थे। उनका कहना था जिस तरह अण्डे से बच्चे निकलते हैं, वैसे ही अण्डे से वर्ण या अक्षर भी निकलते हैं।

इस पद्धति का हिन्दीकरण किया गया और अण्डे का आकार बनाकर हिन्दी के वर्ण निकालने की कला को प्रदर्शित किया जाता था। वर्णों के क्रम में परिवर्तन को महत्व न दिया जाय तो यह प्रौढ़ शिक्षा पद्धति परम्परागत वर्णमाला के सिद्धान्त का परिचय देने वाली सिद्ध होती है।

कहानी कहने का अपना विधान है। कहानी सबसे रोचक विद्या है। इसका अस्तित्व उतना ही पुराना है जितना पुराना मानव का अस्तित्व है। मानव के आदि काल से ही कहानी का उससे घनिष्ठ सम्बन्ध है।

पंच तंत्र ऐसी ही कहानियों का संग्रह है जिनके माध्यम से विष्णु शर्मा नाम के पण्डित ने राजपुत्रों को राजनीति, धर्म एवं सांसारिक ज्ञान की शिक्षा छः महीने के अल्प काल में दे दी थी।

कहानी के द्वारा प्रौढ़ों को साक्षर करने की शिक्षा प्रणाली जितनी रोचक है, उतनी ही श्रेष्ठ भी है। कहानी सिद्धान्त वाक्यों से आरंभ करने वाली प्रौढ़ शिक्षा प्रणाली का विस्तार मात्र है जिससे पढ़ाई की प्रारंभिक अवस्था में वाक्यों के एक क्रमबद्ध समूह को कहानी के रूप में शिक्षण का आधार बनाया जाता है। साथ ही विकसित भी किया जाता है।

कहानी पद्धति वाक्यों की तुलना में विचार की एक अधिक पूर्ण ईकाई प्रस्तुत करने वाली है। इसलिए कि शिक्षार्थी को घटनाओं के पूरे सिलसिले से गुजरना पड़ता है, जिसमें विधिवत रूप से शुभारम्भ, विकास, चरम सीमा तथा अन्त तक की योजना होती है। कहानी पद्धति से सीखने की प्रक्रिया में सार्थकता तो आती ही है साथ ही विचार शृंखला की दृष्टि से सोचने समझने का प्रशिक्षण भी हो जाता है।

कहानी पद्धति का एक संशोधित रूप है प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में प्रयुक्त किये जाने वाला भजन शिक्षा प्रणाली का स्वरूप। भारत धर्म प्रधान देश है अतः कहानी पद्धति का प्रयोग यहाँ सफल नहीं हुआ तो यह सोचा गया कि यहाँ पर धर्म से सम्बन्धित शिक्षा ही प्रौढ़ शिक्षा के साक्षरता कार्यक्रम को सफल बना सकती है।

इस दृष्टि से भजनों का संग्रह किया गया है। उन्हीं भजनों के माध्यम से प्रौढ़ों को शिक्षा देने का क्रम निर्धारित किया गया। इन्हें गीत भी कहा जाता है। सीखने के लिये ये भजन सशक्त माध्यम हैं जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं :

1. **राम नाम की लूट है, लूटी जाय सो लूट।**
   अन्त काल पछतायगा, प्राण जाएँगे छूट।।

2. **राम लक्ष्मण जानकी, जय बोलो हनुमान की।।**

3. **राम नाम लड्डू, गोपाल नाम घी।**
कृष्ण नाम मिश्री, घोल घोल पी।।

ये भजन शिक्षार्थियों को याद कराये जाते रहे। इन्हें याद कराने के बाद लिखने का अभ्यास कराने के नियम का पालन किया गया। पहले दिन बर्तन को पकड़ना सिखाया गया। बाद में सकारात्मक विधि अपनाने पर बल दिया गया।

इस प्रौढ़ शिक्षा प्रणाली में प्रौढ़ की भूलों की और संकेत न करने का निर्देश है। भूलों को सही करके अनपढ़ व्यक्ति से यह कहा जाना चाहिए कि इस प्रकार लिखा जाता तो अधिक अच्छा होता।

गीत पद्धति में एक और प्रयोग भी किया गया। इस प्रकार की प्रौढ़ शिक्षा प्रणाली में एक गीत का ही प्रयोग किया जाता था। गीत एकदम सरल था। सादगी इस गीत की विशेषता थी। गीत इतना बड़ा था कि पूरे श्यामपट्ट पर इसे लिखा जाता था। इसकी प्रारंभिक पंक्तियाँ है :

कलम से लिखेंगे
कलम से पढ़ेंगे,
कलम से जियेंगे,
कलम से मरेंगे,

यह शिक्षा प्रणाली बहुत सरल है किन्तु इसमें संयुक्ताक्षर नहीं सिखाये जाते।

राजस्थान में यह नारा भी प्रभावशाली ढंग से गूंजा–ईच वन टीच वन। अर्थात् हर पढ़ा लिखा व्यक्ति कम से कम एक अनपढ़ व्यक्ति को पढ़ाये। उसकी निरक्षरता दूर करें। यदि एक व्यक्ति कम से कम एक व्यक्ति को एक वर्ष में भी साक्षर करता तो निरक्षरता की समस्या का समाधान हो जाता किन्तु जितने जोर या तेजी से नारा गूंजा, उतनी गति से इसका क्रियान्वयन नहीं हो सका।

प्रौढ़ों को आकर्षित करने के लिए और उनकी सीखने में रुचि बनाये रखने के लिए शब्द चित्र सिद्धान्त को अपनाया। शब्द चित्र सिद्धान्त में ऐसी वस्तुओं की खोज की गई जिनका आकार उस अक्षर से मिलता–जुलता हो जिस अक्षर से उस वस्तु का नाम आरंभ होता है। इसका मतलब यह था कि सीखने वाले के मन पर यह प्रभाव अंकित हो जाय कि यह अक्षर उसी वस्तु से निकला है।

इस प्रौढ शिक्षा प्रणाली की प्राइमर में हर वर्ण की शिक्षा देने के लिए पृष्ठ में एक और वर्ण का प्रयोग करते हुए कुछ वाक्य लिखे रहते हैं। दूसरी ओर चार खाने रहते हैं। एक में उस शब्द का चित्र इस प्रकार बनाया गया है कि शब्द का आरम्भिक वर्ण लगे। दूसरे में, वर्ण को इस प्रकार बनाया गया है जिससे चित्र समझा जा सके। तीसरे में, वर्ण, चित्र सब बने हैं और चौथे में वर्ण है और ा की मात्रा है। उदाहरण के लिए आ वर्ण को लिया जा सकता है।

पहले खाने में आम का चित्र इस प्रकार बनाया जाता है कि अ मालूम दे। दूसरे में आ इस प्रकार बनाया जाता है कि आम मालूम हो। तीसरे में आ आम का चित्र और आम शब्द लिखा रहता है। चौथे में अ और ा लिखा रहता है। इसी प्रकार सभी वर्णों के सीखने का विधान है।

यह शिक्षा प्रणाली इसलिए सफल न हो सकी क्योंकि स्थानीय बोलियों में वस्तुओं के नाम भिन्न–भिन्न थे। उदाहरण के लिए आम को कहीं आम कहा जाता है कहीं केरी कहा जाता है। कहीं रसाल। ऐसा सभी वर्णों के साथ हुआ इसलिए यह प्रणाली सफल न हो सकी।

विभिन्न प्रयोग

देश के स्वाधीन होने पर निरक्षरता का अन्धकार मिटाने के बारे में हर तरह के प्रयास किये गए। देश के भीतर जो प्रयास चल रहे थे उनके अतिरिक्त प्रयास करने के लिये दूसरे देशों में प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में किये गए सफल प्रयोगों का अध्ययन किया गया।

इस प्रकार का अध्ययन डेनमार्क में किया गया। प्रौढ़ शिक्षा का कार्य सबसे आकर्षक पाया गया क्योंकि भारतवर्ष जहाँ कृषि प्रधान देश हैं, वहीं डेनमार्क का प्रमुख व्यवसाय पशु पालन है। इसलिए व्यावसायिक दृष्टि से दोनों देशों में निकटता है। कृषि एवं पशु पालन का एक–दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

डेनमार्क में प्रौढ़ शिक्षा का कार्य भी रोचक रहा। एक विद्वान् ने अपने निवास पर ही कुछ शिक्षार्थियों को छः माह तक आवास की व्यवस्था की। उन्हें साक्षरता आन्दोलन की सफलता के लिए आवश्यक प्रशिक्षण दिया। कृषि और पशु पालन के सम्बन्ध में अच्छी से अच्छी जानकारी दी। इसके बाद शिष्यों से छः माह तक अपने–अपने क्षेत्रों में जाकर कार्य करने के लिए कहा। इसी प्रकार यह कार्यक्रम आगे बढ़ता गया। छः माह तक प्रशिक्षण देने वाले शिक्षक शेष छः माह अपने प्रशिक्षित शिष्यों के कार्य का अवलोकन करते जाते थे और आवश्यक–तानुसार उन्हें निर्देश भी देते थे। इस आन्दोलन को फोक स्कूल के नाम से

जाना गया जिससे डेनमार्क में प्रौढ़ शिक्षा का लक्ष्य प्राप्त किया गया।

फोक स्कूल के आन्दोलन को आदर्श मानकर अपने देश में भी अपनाया गया। यहाँ, इसी के अनुरूप 20 जनता कॉलेज खोले गये, जहाँ 'ग्राम युवा नेतृत्व' के नाम से प्रशिक्षण दिया गया। अपने राजस्थान में एक जनता कॉलेज उदयपुर में राजस्थान विद्यापीठ द्वारा आरंभ किया गया। देश भर के 19 जनता कॉलेज चल न सके, बंद हो गये। राजस्थान में आरंभ होने वाले जनता कॉलेज आज भी प्रौढ़ शिक्षा की प्रयोगशाला के रूप में कार्यरत हैं।

इस समय उदयपुर के डबोक में चलने वाले जनता कॉलेज ने समय के अनुरूप अनेक कार्यक्रम अपनाये हैं। ग्राम युवा नेतृत्व के साथ–साथ औद्योगिक प्रशिक्षण के कार्यक्रम भी संचालित किये गए। ग्राम पंचायतों, पंचायत समितियों के चुने हुए प्रतिनिधियों एवं प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों को भी साक्षरता आन्दोलन की सफलता के लिये अल्पकालीन शिक्षण की व्यवस्था की गई।

इसी प्रकार कनाडा में चलाये गए प्रौढ़ शिक्षा आन्दोलन का भी अध्ययन किया गया। वहाँ उपयोगी साक्षरता को महत्व दिया गया। वहाँ यह समझा गया था कि यदि साक्षरता से कोई लाभ नजर नहीं आएगा तो अनपढ़ व्यक्ति साक्षरता की और आकर्षित क्यों होगा, अग्रसर क्यों होगा? इसलिए वहाँ व्यावसायिक प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई। मनोरंजन के कार्यक्रमों का प्रशिक्षण दिया गया। इन कार्यक्रमों के माध्यम से लक्ष्य प्राप्त किया गया।

कनाड़ा के प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों का उदाहरण लेकर अपने यहाँ इस प्रकार विद्यालय खोले गए जिनमें तरह–तरह की कलाओं का प्रशिक्षण दिया गया। इन कलाओं का प्रशिक्षण प्राप्त कर शिक्षार्थी में इतनी व्यावसायिक योग्यता हो जाती थी कि उससे इतनी आय अर्जित हो सके जिससे वह आत्म–निर्भर हो सके। आय अर्जित कर सकने वाले और बढ़ाने वाले इस प्रशिक्षण की ओर युवाओं का आकर्शण बढ़ा। आई. टी. आई के नाम से सारे राजस्थान में ये विद्यालय खोले गए। ये सभी विद्यालय सफलता पूर्वक चल रहे हैं।

इंग्लैण्ड में प्रौढ़ शिक्षा का कार्य प्रभावशाली ढंग से इसलिए सफलता की और अग्रसर हुआ क्योंकि इंग्लैण्ड की सरकार ने इसे गम्भीरता से लिया। प्रौढ़ शिक्षा विभाग की स्थापना कर सरकार की ओर से सशक्त कदम उठाये गए एवं स्वयं–सेवी संस्थाओं का योगदान भी इस दिशा में महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ।

इस दृष्टि से राजस्थान में भी स्वयं सेवी संस्थाओं ने बहुत महत्वपूर्ण कार्य किया है। उन ग्रामीण अंचलों में भी स्वयं–सेवी संस्थाओं ने साक्षरता की

अलख जगाई है जो बिखरी हुई आबादी वाले हैं जहाँ यातायात का कोई साधन आज भी पहुंच नहीं पाया है। सरकार की सक्रियता के लिए पं. जनार्दनराय नागर ने अपने विधायक काल में (1957–1962) एक प्रस्ताव बिल के रूप में प्रस्तुत किया था जो समाज शिक्षा एक्ट के नाम से पारित भी हुआ किन्तु दृढ़ संकल्प के अभाव में उसे क्रियान्वित नहीं किया जा सका। फलतः प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में उतने प्रभावशाली कीर्तिमान अर्जित नहीं किये जा सके जितने इस एक्ट के लागू होने से किये जा सकते थे।

सोवियत रूस में प्रौढ़ शिक्षा का आन्दोलन जन–आन्दोलन के रूप में आरम्भ किया गया। भविष्य में निरक्षरता का प्रतिशत न बढ़े इसके लिये 6 वर्ष से 14 वर्ष तक के हर बालिका–बालक के लिए विद्यालय जाना आनिवार्य कर दिया गया। प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों में प्रौढ़ों को पढ़े–लिखे व्यक्ति को समय देना अनिवार्य कर दिया गया। चाहे वह पढ़ा–लिखा व्यक्ति वकील हो, मजदूर हो, किसान हो, क्लर्क हो, अधिकारी हो, डॉक्टर हो, शिक्षक हो, विद्यार्थी हो।

राजस्थान में भी यह नियम सिद्धान्ततः स्वीकार किया गया कि हर बालक–बालिका को विद्यालय में अनिवार्य रूप से भर्ती कर दिया जाय किन्तु प्रजातन्त्र का शासन है और वोटों की खातिर इसे अनिवार्य किया नहीं गया। इसी तरह इसे जन–आन्दोलन के रूप में चलाने की आवश्यकता तो अनुभव की जाती रही लेकिन पढ़े–लिखे लोग समय देने में तत्परता से लगे नहीं। यद्यपि व्यक्तिगत रुचि लेकर प्रौढ़ शिक्षा का कार्य करने वाले व्यक्तियों के इक्का दुक्का उदाहरण दिये जा सकते हैं।

अमेरिका में प्रौढ़ शिक्षा की दृष्टि से अनेक प्रकार के प्रयोग और परीक्षण किये गए। सेना, उद्योगों एवं व्यवसायों में लोगों को साक्षर और शिक्षित करने पर बल दिया गया। सैनिकों को साक्षर बनाने के लिए सरकार ने महत्वपूर्ण कदम उठाये वहीं उद्योगों व व्यवसायों में लगे लोगों को शिक्षित करने के लिए उद्योगपतियों एवं व्यवसायियों ने व्यवस्था की। वहाँ की स्थानीय निकायों ने भी बहुत महत्वपूर्ण कार्य किया।

राजस्थान में भी उद्योगपतियों ने इस ओर ध्यान दिया है और अपने उद्योगों में कार्यरत श्रमिकों की साक्षरता के लिए समुचित प्रबन्ध किये हैं। व्यवसायों में काम करने वाले श्रमिकों की साक्षरता के लिए स्वयं–सेवी संस्थाएँ सक्रिय रही हैं। सरकार ने प्रौढ़ शिक्षा का कार्य करने के लिए प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों का उपयोग करने का रास्ता अपनाया है।

जापान के लोगों की पहचान ही उनकी देश भक्ति है इसलिए प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली समस्याओं का सामाधान वहाँ के जन–जीवन में व्याप्त देश भक्ति ने खोज लिया। भाषा के संबंध में आने वाली अड़चनों को भी इस प्रकार दूर कर लिया गया। इसी प्रकार प्रौढ़ शिक्षा के मार्ग में आने वाली परम्परागत रूढ़ियों और मान्यताओं के कारण आने वाली रुकावट भी दूर कर ली गयी। जापान के लोगों की देश–भक्ति ने ही कार्य में गति लाने वाली क्षमता व तीव्रता उत्पन्न की।

राजस्थान के लोगों में भी देश भक्ति है। स्वाभिमान है। उनके आचरण में तेजस्विता है। फिर भी परम्परागत रूढ़ियों और अन्धविश्वासों की जड़ता को भंग करने में काफी समय लगा है और लग रहा है। साथ ही मेवाड़ी, मारवाड़ी, वागड़ी, हाड़ौती आदि की क्षेत्रीयता का भी अपना रंग है। बोलियों के कारण भी रुकावट आती रही है। राजस्थान की लोक संस्कृति के चैतन्य से प्रौढ़ शिक्षा के काम को गति मिली है। इससे लगता है अब राजस्थान पूरी तरह जागा है क्योंकि अजमेर जिला पूरी तरह साक्षर हो गया है। भरतपुर, अलवर और डूँगरपुर को पूर्ण साक्षर बनाने का दष्ढ़ संकल्प लिया गया है।

चीन में श्रम शिक्षण को महत्व दिया गया। ग्रामीण क्षेत्रों में व आन्तरिक अंचलों में सामुदायिक शिक्षण केन्द्रों पर कक्षाएँ चलाने की व्यवस्था की गई। प्रौढ़ शिक्षा का काम करने वाले चीन में अनेक प्रकार के संस्थान हैं। स्वयं सेवी संगठनों के द्वारा प्रौढ़ों को आवश्यकतानुसार निर्देश देते हुए मार्गदर्शन का कार्य किया गया।

राजस्थान में भी सामुदायिक शिक्षण का कार्यक्रम अत्यन्त सशक्त और संगठित ढ़ंग से चलाया जा रहा है। इसके अन्तर्गत अनेक प्रकार के सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं। महापुरुषों के व्याख्यान होते हैं, गोष्ठियाँ की जाती हैं। सामुदायिक विकास के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी दी जाती है।

राजस्थान राष्ट्र की मुख्य धारा के साथ सम्बद्ध रहा है। यहाँ राष्ट्रीय चेतना के विकास की हमेशा साधना की गई है इसीलिये शिक्षा के संबंध में हमेशा प्रयोग किये जाते रहे हैं। प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में अभिनव प्रयोग अनेक नामों से भी किये गए हैं। उदाहरण के लिए प्रौढ़ शिक्षा, समाज शिक्षा, लोक शिक्षण, जन शिक्षण, उपयोगी साक्षरता, सम्पूर्ण साक्षरता इत्यादि।

आरंभ में प्रौढ़ शिक्षा का लक्ष्य लोगों को साक्षर करने तक ही सीमित था किन्तु जब हमेशा यह देखा गया कि निरन्तरता के अभाव में नव साक्षर पुनः

निरक्षरता की श्रेणी में आ जाते हैं तो यह अनुभव किया गया कि इसके स्वरूप में विस्तार किया जाए।

प्रौढ़ शिक्षा को जब समाज शिक्षा का नाम दिया गया तब उसके लक्ष्य को अनपढ़ व्यक्तियों को साक्षर बनाने तक ही सीमित न रखा गया बल्कि नागरिकता और सामाजिकता को भी साक्षरता के साथ शामिल कर लिया गया। अनपढ़ लोगों को शिक्षा प्रजातन्त्र के योग्य तथा सार्थक नागरिक बनाने के लिए दी जाने लगी।

लोक शिक्षण के अन्तर्गत साक्षरता शिक्षण के साथ–साथ चेतना एवं व्यावहारिकता के ज्ञान को भी सम्मिलित किया गया। अनपढ़ लोगों के व्यवसाय से सम्बन्धित नवीनतम जानकारियों से अवगत कराने का भी निश्चय किया गया। भजन मण्डलियों के आयोजनों द्वारा जहाँ जनता में अभिरूचि जगाने का प्रयास किया गया, वहीं ज्ञान–गोष्ठियों के माध्यम से समाज में व्याप्त कुरीतियों एवं अन्धविश्वासों को दूर करने का वातावरण भी बनाया गया।

प्रौढ़ शिक्षा को सामुदायिक विकास के साथ जोड़ने का क्रम जब चला तो इसे सामुदायिक शिक्षण की भूमिका निभाना आवश्यक हो गया। इसके अन्तर्गत सम्पूर्ण समुदाय के सर्वांगीण तथा सार्वजनिक विकास का लक्ष्य रखा गया। इसके लिए जो कार्यक्रम अपनाये गए उनमें राजनीति, नागरिकता, स्वास्थ्य व सफाई आदि की शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की गई। इसके अन्तर्गत प्रौढ़ों के लिए खेल–कूद तथा मनोरंजन की सुविधाएँ भी प्रदान की गई।

जन शिक्षण के नाम से प्रौढ़ शिक्षा के स्वरूप को व्यापक बनाने का प्रयास किया गया। इसमें साक्षरता को सामान्य जीवन और कार्यों से सम्बन्धित करने की व्यवस्था की गई। 1978 में जब भारत सरकार ने प्रौढ़ शिक्षा एवं अनौपचारिक शिक्षा को राष्ट्रीय कर्त्तव्य माना तो राजस्थान में भी औपचारिक शिक्षा योजना को लागू किया गया। उन लोगों को साक्षरता के कार्यक्रमों से सम्बन्ध किया गया जिन्होंने किसी कारणवश पाठशाला जाना छोड़ दिया था और अनपढ़ की श्रेणी में आ गए थे।

उपयोगी साक्षरता या व्यावसायिक साक्षरता के अन्तर्गत प्रौढ़ों को उनके व्यवसाय से सम्बन्धित जानकारी देने का लक्ष्य रखा गया ताकि उनकी आय बढ़ सके जिससे अनपढ़ लोग साक्षरता की उपयोगिता समझ सकें।

1989 में साक्षरता मिशन स्थापित किया गया जिसके द्वारा साक्षरता के लिए सम्पूर्ण समाज को सक्रिय करने की योजना अपनायी गई अर्थात् साक्षरता

कार्यक्रम में विद्यार्थी, अध्यापक, डॉक्टर, वकील, इंजीनियर, मजदूर, किसान, व्यापारी सभी को सम्मिलित करने का प्रयास किया गया। इसके परिणाम भी उत्साहवर्धक रहे। नव साक्षरों के लिए साक्षरता के क्रम को निरन्तर जारी रखने की दृष्टि से साक्षरता निलयम स्थापित किये गए जिनके द्वारा प्रौढ़ों की रुचि के अनुरूप साहित्य रचा जाने लगा।

सम्पूर्ण साक्षरता के नाम से इस समय राजस्थान में एक नया कार्यक्रम आरम्भ किया गया। इसमें जहाँ सम्पूर्ण क्षेत्र को साक्षर करना है वहाँ पहले सर्वेक्षण कर लिया जाता है और जो भी अनपढ़ उस क्षेत्र में होते हैं उनके अवकाश के क्षणों का उपयोग कर उन्हें साक्षर करने की प्रक्रिया अपनायी जाती है। इस प्रक्रिया में उक्त अनपढ़ व्यक्ति के पास–पड़ोसी भी जो साक्षर व शिक्षित होते हैं, सक्रिय भूमिका निभाते हैं। स्वयं–सेवी संस्थाएँ और सरकारी संस्थान तथा शिक्षित समाज मिलकर इस काम में सहयोग करते हैं। इस प्रकार जब सम्पूर्ण गाँव को साक्षर कर लिया जाता है, इसके बाद पंचायत क्षेत्र और पंचायत समिति को सम्पूर्ण साक्षर किया जाता है। तदनन्तर सम्पूर्ण जिले को साक्षर किया जाता है। अजमेर जिले को इसी प्रकार सम्पूर्ण साक्षर करने का लक्ष्य प्राप्त किया गया है। अलवर, डूंगरपुर और भरतपुर जिलों को सम्पूर्ण साक्षर करने के लिए भी यही सम्पूर्ण साक्षरता की विधि अपनायी गई है। समान्यतः सम्पूर्ण राजस्थान में इस समय यह लहर चल रही है।

आशा ही नहीं, विश्वास है कि शीघ्र ही सम्पूर्ण राजस्थान पूर्णरूपेण शत–प्रतिशत साक्षर हो जाएगा।

***

अध्याय - 24

साक्षर भारत प्रायोजना - एक अध्ययन

साक्षर भारत योजना को तत्कालीन माननीय प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहनसिंह जी ने अन्तर्राष्ट्रीय साक्षरता दिवस 8 सितम्बर, 2009 को प्रारम्भ किया था। यह योजना सम्पूर्ण रूप से मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार के विद्यालयी शिक्षा एवं विकास विभाग द्वारा प्रारंभ की गयी थी। इसका उद्देश्य प्रौढ़ शिक्षा को प्रोन्नत करना था, इसके अतिरिक्त इस योजना के अन्तर्गत महिला साक्षरता और समाज के उस वर्ग के लिए जो किन्ही कारणों से अपनी बाल एवं किशोर अवस्था में औपचारिक शिक्षा प्राप्त नहीं कर सका था। इस योजना के अन्तर्गत प्रौढ़ों के लिए शिक्षण की ऐसी व्यवस्था करना था जहाँ वह किसी भी प्रकार की शिक्षा को प्राप्त कर सके।

प्रौढ़ शिक्षा की शिक्षण व्यवस्था के अतीत में यदि दृष्टिपात किया जाए तो यह ज्ञात होता है कि भारत में प्रौढ़ शिक्षण काफी समय पूर्व से किया जाता रहा है। स्वतंत्रता से पूर्व भी महात्मा गांधी की रचनात्मकता कार्य योजना के अन्तर्गत संपूर्ण भारत में ऐसी संस्थाओं का गठन हुआ था जो पुरुष एवं महिला शिक्षा के लिए प्रयत्नशील थे लेकिन ब्रितानी दासता के अन्तर्गत ऐसे कार्यों को संपादित करना अत्यंत दुष्कर था। यदि स्वतंत्रता से पूर्व के दस्तावेजों का अध्ययन किया जाए तो यह स्पष्ट होता है कि ब्रितानी शासन में राष्ट्रभाषा हिन्दी का ज्ञान देना भी एक सत्ता विरोधी कार्य था।

15 अगस्त, 1947 को भारत गणराज्य के स्वतंत्र भारत में प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम को सम्मिलित किया गया था लेकिन यह प्रयास भी देश में विद्यमान विशाल निरक्षर प्रौढ़ों को साक्षर कर सकने में असमर्थ सिद्ध हुए थे। अतः अब योजना निमार्ण करते समय साक्षरता उन्मूलन के कार्यक्रमों को समुचित स्थान दिया गया जिसके फलस्वरूप सन् 1978 में स्वतंत्र भारत में प्रथम बार जन शिक्षण निलयम को केन्द्र मानकर उसके अन्तर्गत उत्तर साक्षरता और सतत् शिक्षा को प्रभावी प्रविधियों से प्रारंभ किया गया। इसी के अन्तर्गत ग्रामीण कार्यात्मक साक्षरता कार्यक्रम के द्वारा

केन्द्र आधारित प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों का देशव्यापी कार्यान्वयन प्रारंभ हुआ। इस योजना के अन्तर्गत जनशिक्षण निलयम का गठन प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों से निकलने वाले नवसाक्षरों की आवश्यकताओं तथा आगे चलकर उनके सतत् शिक्षा सम्बंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए किया गया। इस प्रकार स्वतंत्र भारत में शासकीय स्तर पर प्रौढ़ों को शिक्षित करने हेतु स्वतंत्र प्रयास का गठन करना पहला प्रयोग था।

इसके पश्चात् 1986 में नवीन राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अन्तर्गत प्रौढ़ शिक्षा को व्यापक स्वरूप प्रदान करने की आवश्यकता पर बल दिया गया तथा यह स्वीकार किया गया कि शिक्षा के तीन आयाम–शिक्षण, शोध एवं प्रसार कार्यों का एक समान महत्व है। इसके द्वारा उच्च शिक्षा के केन्द्रों को भी प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों से जोड़ने पर महत्व दिया गया था। इस प्रकार से नवीन राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अन्तर्गत भारत सरकार द्वारा 5 मई, 1988 को राष्ट्रीय साक्षरता मिशन को प्रारंभ किया गया। इस योजना के अन्तर्गत यह लक्ष्य रखा गया कि सन् 1990 तक देश के 15–35 आयु वर्ग के आठ करोड़ प्रौढ़ों को साक्षर कर लिया जाएगा तथा इस कार्यक्रम से सरकारी, गैर सरकारी अभिकरणों तथा इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए विश्वविद्यालयों में भी प्रौढ़ एवं सतत् शिक्षा विभागों की स्थापना की गयी तथा उनको विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से अनुदान प्रदान किए जाने के लिए प्रौढ़ एवं सतत् शिक्षा के अन्तर्गत पृथक से बजट प्रदान किया गया। लेकिन जब इस योजना का मूल्यांकन किया गया तो नीतिकारों को यह स्पष्ट हो गया कि निरक्षरता–उन्मूलन के लिए किए जा रहे प्रयासों से सम्पूर्ण राष्ट्र को साक्षर नहीं किया जा सकता है।

सन् 1988 की योजना की आंशिक सफलता के बाद भी नीतिकार निरन्तर ऐसे उपागमों की खोज में सलंग्न रहे जिनके द्वारा संपूर्ण भारत को साक्षर किया जा सके, इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार ने सम्पूर्ण साक्षरता उपागम को सभी राज्यों के लिए भी क्रियान्वित करने का निर्णय लिया क्योंकि इस उपागम के द्वारा केरल राज्य ने 91 प्रतिशत तक साक्षरता के लक्ष्य को प्राप्त कर लिया।

इस संपूर्ण साक्षरता अभियान के अन्तर्गत 80 प्रतिशत तक व्यक्तियों को साक्षर बनाने का निर्णय लिया गया तथा यह माना गया कि यदि 80 प्रतिशत साक्षरता को दर प्राप्त कर ली जाती है तो शेष 20 प्रतिशत साक्षरता के लाभ को देखते हुए स्वयं साक्षर होने का प्रयत्न करेगें। इस अभियान के

अन्तर्गत नवसाक्षरों और ऐसे साक्षर जो प्राथमिक शिक्षा को किन्हीं कारणों से छोड़ चुके हैं उनके लिए शिक्षा को निरन्तर जारी रखने के लिए जनशिक्षण विभागों की स्थापना संपूर्ण राष्ट्र में की गयी। यहाँ यह उल्लिखित किया जाना अत्यंत समीचीन होगा की भारत में राष्ट्रीय साक्षरता मिशन की स्थापना से पूर्व केन्द्रीय शासन द्वारा उत्तर साक्षरता तथा सतत् शिक्षा के लिए अनुदान देना प्रारंभ कर दिया गया था क्योकि इस तथ्य से सभी भलीभांति परिचित थे कि साक्षर हुए प्रौढ़ों के लिए उत्तर साक्षरता तथा सतत् शिक्षा केन्द्रों की स्थापना किया जाना अत्यंत आवश्यक है अन्यथा इसके अभाव में साक्षरता अभियान बेमानी हो जाएगा।

सन् 1986 की भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीति, जो 1992 पुनर्संशोधित हुई, में यह विचार किया गया कि जीवन पर्यन्त शिक्षण शिक्षा व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य है जिसके द्वारा सार्वभौमिक साक्षरता तथा युवाओं, गृहिणियों, कृषकों एवं औद्योगिक कामगारों और पेशेवरों के लिए उनकी रूचिके अनुसार उनके सुविधाजनक स्थान पर शिक्षा को विस्तार प्रदान किए जाने की व्यवस्था करना आवश्यक है। आजीवन अथवा जीवन पर्यन्त शिक्षा के सम्बंध में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के दिशा निर्देशों के अनुसार "देश में अनेक अशासकीय संगठन, शासकीय संगठन एवं विश्वविद्यालय गत तीन दशकों से प्रौढ़ एवं निरन्तर शिक्षा की अनेक योजनाओं में संलग्न है, जिसका प्रमुख कारण भारत में निरक्षरों और नवसाक्षरों की बड़ी आबादी है।"

उक्त उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुए 11वीं पंचवर्षीय योजना के निर्माण के समय भारत सरकार ने निरन्तर शिक्षा के क्षेत्र का विस्तार करते हुए एक नवीन विचार प्रतिपादित कर निरंतर शिक्षा को जीवन पर्यन्त शिक्षण और ज्ञान के विस्तार का स्वरूप प्रदान किया। यह विचार आंशिक रूप से वैश्विक विचारों के आदान–प्रदान और देश तथा विदेश के बाहर हो रहे सामाजिक आर्थिक परिवर्तनों का प्रतिफल था क्योंकि इस समय तक भारत सरकार को यह आभास हो गया था कि नवीन आर्थिक कौशल के ज्ञान के अभाव में राष्ट्र की आर्थिक प्रगति में वृद्धि नहीं की जा सकती है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि इस युग में प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह आवश्यक हो गया है कि वह स्वयं को नवीन ज्ञान अर्जित करने के लिए मानसिक रूप से तैयार रखे अन्यथा विकास की इस दौड में उसके पिछड़ने की संभावना बन जाएगी। इन्हीं सभी उद्देश्यों को मध्यस्थ रखते हुए 8 सितम्बर, 2009 को साक्षर भारत प्रायोजना को

प्रारभ किया गया तथा उस आबादी को, जो युगों से अनेक मौलिक अधिकारों से वंचित रही है, जोड़े जाने पर अधिक बल दिया गया।

जैसा कि हमें ज्ञात है कि ऐसे निरक्षरों को, जो 15 वर्ष से 35 वर्ष की आयु वर्ग के हैं, कार्यात्मक साक्षरता एक समयबद्ध योजना के अन्तर्गत प्रदान की जाती है, इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए 1988 में राष्ट्रीय साक्षरता योजना (एनएलएम) को प्रारंभ किया गया और जो 9वीं और 10वीं पंचवर्षीय योजना तक निरंतर जारी रही। 10वीं पंचवर्षीय योजना में 7 मार्च, 2007 तक राष्ट्रीय साक्षरता योजना के अन्तर्गत 597 जिले संपूर्ण साक्षरता अभियान के अन्तर्गत सम्मिलित हो गए थे तथा 485 जिलों में सफलतापूर्वक साक्षरता अभियान एवं 328 जिले निरंतर शिक्षा योजना के अन्तर्गत आ गए थे, जिसके परिणामस्वरूप इन समस्त कार्यक्रमों द्वारा 127.45 मिलियन साक्षर हो गए थे तथा जिसमें 60 प्रतिशत महिलाएँ भी थी, जबकि 23 प्रतिशत अनुसूचित जाति और 12 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति के व्यक्ति भी साक्षर हो गए थे। लेकिन इस विशाल जनसंख्या को साक्षर किए जाने के पश्चात् भी एक नवीन निरक्षर वर्ग सामने था, जिसको साक्षर किया जाना था, इसके लिए 11वीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत राष्ट्रीय साक्षरता योजना को निरंतर रखने का निर्णय लिया गया। साक्षरता के महत्व को मध्यस्थ रखते हुए माननीय राष्ट्रपति सहित माननीय प्रधानमंत्री भी महिलाओं को साक्षर करने पर बल प्रदान कर चुके थे। इन्ही सभी कारणों को दृष्टिगत रखते हुए राष्ट्रीय साक्षरता परियोजना के नीति नियामकों द्वारा साक्षर भारत योजना को प्रारंभ करने का निर्णय लिया गया और इस योजना को तत्कालीन प्रधानमंत्री महोदय द्वारा 8 सितम्बर, 2009 को शुभारंभ किया गया।

साक्षर भारत योजना का मुख्य उद्देश्य प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम पर अधिक बल दिया जाना था तथा इसके अन्तर्गत उस वर्ग को भी सम्मिलित किया गया, जो औपचारिक शिक्षा के अवसरों का संपूर्ण लाभ नहीं प्राप्त कर सके थे लेकिन प्रौढ़ आयु में ऐसा वर्ग साक्षरता, कौशल वृद्धि तथा कला आदि जैसे विषयों का ज्ञान प्राप्त करना चाहता था। इस योजना के अन्तर्गत प्रमुख रूप से महिलाओं और किशोरों को तथा अल्पसंख्यकों को सम्मिलित किया गया, जिसके परिणाम–स्वरूप 2012 तक 70 मिलियन प्रौढ़ों को साक्षर कियाा जा चुका था, जिसमें 60 प्रतिशत महिलाएँ थी।

साक्षर भारत प्रायोजना इस अर्थ में अभी तक जारी सभी योजनाओं से इसलिए अधिक महत्वपूर्ण थी क्योंकि इसमें साक्षरता के अलावा बेसिक एज्यूकेशन

अथवा प्रारंभिक शिक्षा को औपचारिक शिक्षा के समान करना था। इसके अलावा साक्षर भारत प्रयोजना के अन्तर्गत कौशल विकास और निरंतर शिक्षा को जारी रखा गया तथा साक्षर होने के तुरंत पश्चात् साक्षर प्रौढ़ शिक्षा को निरंतर शिक्षा से अबाध रूप से जोड़े रखने पर भी बल दिया गया।

साक्षर भारत प्रयोजना को अधिक सफल और सशक्त बनाने के लिए प्रत्येक ग्राम पंचायत में लोक शिक्षण केन्द्र (एडल्ट एज्यूकेशन सेन्टर) स्थापित किए गए। इसके द्वारा निरंतर शिक्षा के अन्तर्गत अनेकानेक प्रकार के ऐसे कार्यक्रम प्रारंभ किए गए, जिससे प्रौढ़ शिक्षा के लिए शिक्षा प्राप्त करना रोचक बना रहे, इसके लिए प्रत्येक लोक शिक्षण केन्द्र में दो प्रेरक, जिसमें एक का महिला होना अनिवार्य था, भी नियुक्त किए जाने का प्रावधान किया गया।

इस प्रकार से साक्षर भारत प्रायोजना का मुख्य उद्देश्य प्रौढ़ शिक्षा को प्रौन्नत करना और अधिक प्रभावी बनाना था ताकि शनैः शनैः साक्षर समाज के उद्देश्य को प्राप्त किया जा सके। इसके लिए यह आवश्यक हो गया था कि प्रौढ़ एवं निरंतर शिक्षा को औपचारिक शिक्षा के समान स्थायी आधार दिया जाए तथा प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र ऐसे संस्थागत केन्द्र के रूप में विकसित किए जाएं, जो किसी भी दृष्टि से औपचारिक शिक्षा से कमतर नहीं हो। इस योजना को सशक्त आधार प्रदान करने के लिए पंचायती राज व्यवस्था को प्रमुख एजेंसी के रूप में विकसित किया गया ताकि प्रत्येक जिले, ब्लॉक और ग्राम पंचायत स्तर पर प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों का प्रभावी संचालन हो सके।

अन्ततः यह कहना समीचीन होगा कि साक्षर भारत योजना के अन्तर्गत प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम को ऐसा स्वरूप प्रदान किया गया जिसके द्वारा प्रौढ़ शिक्षा जीवन पर्यन्त शिक्षा के एक ऐसा संघटक संस्थान के रूप में स्थापित हो जाए तथा यह किसी भी दृष्टि से औपचारिक शिक्षा से कमतर नहीं हो। साक्षरता भारत योजना की उद्घोषणा के साथ ही प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों में ऐसा उत्साहवर्धक वातावरण निर्मित हुआ जब प्रथम बार अन्तर्राष्ट्रीय साक्षरता दिवस के अवसर पर प्रौढ़ शिक्षा प्राप्त करने वाले व्यक्तियों के लिए सप्ताह भर के कार्यक्रम किए गए, जिससे प्रौढ़ों में एक उत्साह देखने को प्राप्त हुआ, जो उनके आत्मविश्वास को परिलक्षित करता था।

***

अनुक्रमणिका

1. होल्डिज टी.एच. फिजिकल एस्पेक्ट्स, इम्पीरयल गजेटियर्स ब्रिटिश इण्डिया, 1, 30
2. ऋग्वेद 6, 61,12
3. वही 6, 61, 12
4. वही 8,21,18
5. कात्यायन श्रौत सूत्र 12,3,20,24,6,22
   लाट्यायन श्रौत सूत्र 10, 15, 18, 11
   आश्वलायन श्रौत सूत्र 13, 29
6. अ.स. अल्तेकर : एजूकेशन इन इण्डिया, पृ. 326।
7. ऋग्वेद 10/71/7
8. सत्यकेतु विद्यालंकार : प्राचीन भारत पृ. 17।
9. सुभाषित रत्न संग्रह, पृ. 194।
10. मनुस्मृति 12/102
11. शतपथ ब्राह्मण 1.1, 4–5
12. साहित्य संस्थान राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर द्वारा आयोजित ओझा आसन के अन्तर्गत भाषण माला में 23.10.81 को दिया गया डॉ. वी.एन. मिश्र का भाषण।
13. डॉ. एच.डी. सांकलिया, इण्डियन आर्कयोलोजी टुडे, पृ. 41।
14. शतपथ ब्राह्मण, 1,1,3,4–5
14. ऋग्वेद, 2,12,2
16. राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परायें पृ. 13।
17. महाभारत शल्य गदायुद्ध पूर्व
18. महाभारत, वन, तीर्थ यात्रा प्रयाण
19. अनुशासन पर्व, 44/12
20. वही, 44/50,51
21. शल्य पर्व, 29/74

22. आदि पर्व, 43/57
23. मोती सिंह, निर्गुण साहित्य, सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि पृ. 125–127।
24. गोपीनाथ शर्मा, सो.ला.इ.मे.रा., पृ. 268।
25. दशरथ शर्मा, अर्ली चौहान अडानेस्टीज, पृ. 290।
26. डॉ.जे.के. ओझा, राजस्थान सांस्कृतिक इतिहास, पृ. 94।
27. कालूराम शर्मा, उन्नीसवीं सदी के राजस्थान का सामाजिक एवं आर्थिक जीवन, पृ. 136–137।
28. ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग 2, पृ. 787–801।
29. ओझा, उदयपुर का इतिहास, भाग 1, पृ. 16, 17।
30. कालूराम शर्मा, उन्नीसवीं सदी के राजस्थान का सामाजिक एवं आर्थिक जीवन, पृ. 138–142 ।
31. वही, पृ. 144–146 ।
32. फेमिन इन मेवाड़ राजपूताना के गवर्नर जनरल एजेन्ट द्वारा भारत सरकार के लिए लिखा गया फारेन एण्ड पॉलिटिकल डिपार्टमेन्ट। 22–35 पी. आबू. 22 मई, 1900।
33. पाण्डे, राम, एगरेरिअन मूवमेन्ट्स इन राजस्थान, जयपुर, पृ. 24।
34. चौधरी, रामनारायण, आधुनिक राजस्थान का उत्थान, अजमेर, पृ. 47।
35. सक्सेना, शंकर सहाय, बिजौलिया किसान आन्दोलन का इतिहास, पृ. 52–54।
36. वही, पृ. 59।
37. वही, पृ. 59।
38. श्री प्रताप सभा उदयपुर तथा प्रताप जयन्ती महोत्सव, पृ. 1–2।
39. राजस्थान में साहित्यिक संस्थाएं और उनकी देन, पृ. 40।
40. राजस्थान में रचनात्मक कार्य, पृ. 67।
41. श्रोत्रिय अभिनन्दन ग्रंथ, पृ. 16।
42. राजस्थान की साहित्यिक संस्थाएं और उनकी देन, पृ. 47।
43. शोध पत्रिका, वर्ष 33, अंक 2 पृ. 57।
44. राजस्थान में रचनात्मक कार्य, पृ. 57।
45. वसुन्धरा 3 जनवरी 1948, पृ. 6।

**